प्रकाशकीय

श्री दशवैकालिक सूत्र मे साधु-आचार का वर्णन किया गया है। इसकी शैली, भाषा आदि इतनी सरल है कि साधारण पाठक भी साधु-आचार के बारे में सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसीलिये श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर की परीक्षाओं मे भी यह सूत्र निर्धारित किया गया है।

इस सूत्र के और भी कई प्रकार के सस्करण प्रकाशित हुए हैं। किन्तु उनमे सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ इस ढग से नही लिखा गया है, जिससे भावार्थ प्राय अलग से देने की आवश्यकता न रहे। इस सस्करण मे उक्त दृष्टिकोण को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है।

यह सूत्र करीब २५ वर्ष पहले श्री सेठिया जैन ग्रन्थमाला बीकानेर द्वारा प्रकाशित हुआ था। किन्तु अप्राप्य होने से अब पुन. श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है।

यद्यपि प्रूफ सशोधन मे काफी ध्यान रखा गया है, फिर भी कोई त्रुटि रही हो तो पाठकगण सुधार करके सूचित करावें, जिससे आगामी सस्करण में भूल सुधार करने मे सुविधा रहे।

संघसेवक

जुगराज सेठिया, मत्री

सुन्दरलाल तातेड़, सहमंत्री   उगमराज मूथा, सहमत्री

जसकरण बोथरा, ,,   पृथ्वीराज पारख, ,,

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

विषयानुक्रमणिका

अध्ययन	विषय	पृष्ठ
१—	धर्म का स्वरूप, भिक्षु की भ्रमर-जीवन के साथ तुलना।	१-३
२—	साधु को सयम में धैर्यवान् होना चाहिए, विषयवासनाओं से चंचल बने हुए चित्त को संयम मे स्थिर करने के लिए सफल उपाय। रथनेमि और राजमती का दृष्टान्त।	४-९
३—	साधु को आचरण न करने योग्य ५२ अनाचारो का वर्णन।	१०-१५
४—	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छःकाय का वर्णन।	१६-४६
५—	उद्देशा १:- साधु की भिक्षा (गोचरी) की विधि।	४७-८०
	उद्देशा २.- भिक्षा के समय ही भिक्षा के लिए जाना चाहिए।	८१-९९
६—	साधु के अठारह कल्पो का वर्णन।	१००-१२४
७—	वचन की शुद्धि, साधु को कैसी भाषा बोलनी चाहिए, इसका वर्णन।	१२५-१४७
८—	साधु के आचार का सामान्य वर्णन।	१४८-१७३

अध्ययन	विषय	पृष्ठ
९— उद्देशा १:-	विनय की व्याख्या, गुरु की आशातना का कटुफल, गुरु के प्रति विनय-भक्ति रखना।	१७४-१८१
„ २:-	विनय और अविनय के परिणाम।	१८२-१९१
„ ३:-	पूज्यता प्राप्त करने के आवश्यक गुण, आदर्श पूज्यता।	१९२-१९८
„ ४:-	विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपसमाधि और आचारसमाधि का वर्णन।	१९९-२०६
१०—	आदर्श भिक्षु का स्वरूप।	२०७-२१७
प्रथम चूलिका :-	संयम से चलित चित्त को पुनः संयम में स्थिर करने के लिए अठारह बातों का चिन्तन एवं मनन।	२१८-२३०
दूसरी चूलिका :-	साधु के आचार-विचार, वासकल्प तथा विहार आदि का वर्णन। मोक्ष-फल की प्राप्ति।	२३१-२३९

मुद्रक :—

जैन आर्ट प्रेस,

(श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज.)

❀ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ❀

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

(मूल पाठ अन्वय सहित हिन्दी शब्दार्थ और संक्षिप्त भावार्थ)

दुमपुप्फिया नामक प्रथम अध्ययन

धम्मो मगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि त नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अन्वयार्थः— (अहिंसा) अहिंसा-प्राणियो की हिंसा का त्याग करना तथा जीवो की रक्षा करना (सजमो) सयम-और (तवो) तपरूप (धम्मो) श्रुतचारित्र रूप धर्म (मगल) मगल-कल्याणकारी, और (उक्किट्ठ) श्रेष्ठ है। (जस्स) जिस पुरुष का (मणो) मन (सया) सदा (धम्मे) धर्म मे लगा रहता है (त) उसको (देवा) देवता (वि) भी (नमसंति) नमस्कार करते है ॥१॥

भावार्थः श्रुतचारित्र रूप धर्म मे लीन प्राणी देवो का भी पूज्य बन जाता है।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पय ॥२॥

अन्वयार्थः – (जहा) जिस प्रकार (भमरो) भ्रमर

(दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फेसु) फूलो मे से (रस) रस को (आवियइ) पीता है (य) और (पुप्फ) फूल को (ण किलामेइ) पीडित नही करता हैं (य) और (सो) वह भ्रमर (अप्पय) अपनी आत्मा को (पीणेइ) सन्तुष्ट कर लेता है ॥२॥

भावार्थ.— जैसे भ्रमर अनेक वृक्षो के फूलो से थोडा-थोडा रस चूसता है, इस प्रकार वह फूलो को कष्ट नही पहुचाता हुआ अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर लेता है ।

एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए सति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

अन्वयार्थ.— (एमे ए) इसी प्रकार ये (लोए) लोक मे (जे) जो (मुत्ता) द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त (समणा) श्रमण-तपस्वी (साहुणो) साधु (सति) हैं वे (पुप्फेसु) फूलो मे (विहगमा) पक्षियो के (व) समान (दाणभत्तेसणे-णा) दाता द्वारा दिये हुए आहारादि की गवेषणा मे (रया) रत रहते है ॥३॥

भावार्थ.— साधु गृहस्थियो को असुविधा न पहुचाते हुए अनेक घरो से थोडा-थोडा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने मे ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं जिस प्रकार भ्रमर पुष्पो मे रत रहते हैं ।

उत्थानिका: – गुरु महाराज के प्रति शिष्य प्रतिज्ञा करता है :—

वय च वित्ति लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥

अन्वयार्थ:— (जहा) जिस प्रकार (पुप्फेसु) फूलो मे (भमरा) भ्रमर (रीयते) अपना निर्वाह करते हैं । (च) उसी

प्रकार (वय) हम साधु (अहागडेसु) गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहारादि की (वित्ति) भिक्षा (लब्भामो) ग्रहण करेंगे (य) जिससे (कोइ) किसी जीव को (न उवहम्मइ) कष्ट न हो ॥४॥

भावार्थः— भ्रमर की भाति साधु लोग गृहस्थो द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहार मे से थोडा-थोडा लेकर अपनी सयम-यात्रा का निर्वाह करते हैं ।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दता, तेण वुच्चति साहुणो ॥५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (बुद्धा) तत्व के जानने वाले हैं और (महुगारसमा) भ्रमर के समान (अणिस्सिया) कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित (भवति) हैं और (नाणापिंडरया) अनेक घरो से थोडा-थोडा आहारादि लेने मे सन्तुष्ट हैं तथा (दता) इन्द्रियो के दमन करने वाले है । (तेण) इसी से वे (साहुणो) साधु (वुच्चति) कहलाते हैं ॥५॥ (त्तिबेमि) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि-- हे आयुष्मन् जम्बू ! मैंने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है ।

भावार्थः – जो तत्व को जानने वाले हैं, भ्रमर के समान कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित हैं, अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं और जो इन्द्रियो का दमन करते हैं, वे साधु कहलाते हैं ।

सामण्णपुव्वयं नामक दूसरा अध्ययन

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीअतो, सकप्पस्स वस गओ ॥१॥

अन्वयार्थः— (जो) जो (कामे) काम भोगों को (न) नही (निवारए) त्यागता है वह (सकप्पस्स) इच्छाओं के (वसं गओ) वश मे होकर (पए पए) पद पद पर (विसीअतो-विसीदतो) खेदित होकर (सामण्ण) श्रमणधर्म का (कह नु) किस प्रकार (कुज्जा) पालन कर सकता है ॥१॥

भावार्थः— जो इन्द्रियो के विषयो का त्याग नही करता, उसकी इच्छाए हमेशा बढती रहती है, उसे कभी सन्तोष नही होता । सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नही हो सकती । अत सर्वप्रथम इन्द्रियो को वश मे करना चाहिए ।

वत्थगधमलकार, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छदा जे न भु जति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥२॥

अन्वयार्थः— (जे) जो पुरुष (अच्छदा) पराधीन होने के कारण (वत्थ) वस्त्र (गध) गन्ध (अलकार) आभूषण (इत्थीओ) स्त्रियो को और (सयणाणि) शय्या को (न) नही (भु जति) भोगता है । (से) वह (चाइत्ति) त्यागी (न) नही (वुच्चइ) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थः— जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयो का सेवन नही कर सकता, वह त्यागी नही कहलाता। किन्तु अपनी इच्छा से विषयो का त्याग करने वाला ही वास्तव में सच्चा त्यागी कहलाता है ।

जे य कते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठीकुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थः— (जे) जो पुरुष (लद्धे) प्राप्त हुए (वि) भी (कते) मनोहर (पिए) प्रिय (भोए) भोगने योग्य (य) और (साहीणे) स्वाधीन (भोए) भोगो को (पिट्ठीकुव्वइ) उदासीनता पूर्वक (चयई) त्याग देता है (से) वह (हु) निश्चय से (चाइत्ति) त्यागी (वुच्चइ) कहलाता है ॥३॥

भावार्थः— भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगने की स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगो को नही भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है ।

समाइपेहाइ परिव्वयतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा मह नो वि अह वि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज राग ॥४॥

अन्वयार्थः—(समाइपेहाइ) समभाव पूर्वक (परिव्वयतो) सयम मार्ग मे विचरण करते हुए साधु का (मणो) मन (सिया) कभी (बहिद्धा) सयम से बाहर (निस्सरई) निकल जाय तो (सा) वह स्त्री (मह) मेरी (न) नही है और (अह) मैं (वि) भी (तीसे) उसका (नो वि) नही हू । (इच्चेव) इस प्रकार विचार कर (ताओ) उस स्त्री पर से (राग) राग भाव को (विणइज्ज) दूर करे ॥४॥

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमिय खु दुक्खं ।
छिंदाही दोस विणएज्ज राग, एव सुही होहिसि सपराए ॥५॥

अन्वयार्थः— (आयावयाही) आतापना लो और शरीर को तपस्या मे सुखा डालो (सोगमल्ल) सुकुमारता को (चय) त्याग दो (कामे) काम भोगो को (कमाही) दूर करो (खु) निश्चय ही (दुक्ख) दुख (कमिय) दूर होगा (दोष) द्वेष को (छिंदाहि) नष्ट करो (राग) राग को (विणएज्ज) दूर करो (एव) ऐसा करने से (सपराए) ससार मे (सुही) सुखी (होहिसि) होओगे ॥५॥

भावार्थः— पूर्वोक्त गाथा मे सूत्रकर्त्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरग उपाय बतलाया है । अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते है कि सयम से बाहर जाते हुए मन को वश मे करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग करके ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है ।

पक्खदे जलिय जोइ, धूमकेउ दुरासय ।
नेच्छति वतय भोत्तु, कुले जाया अगधणे ॥६॥

अन्वयार्थ.— (अगधणे) अगन्धन नामक (कुले) कुल मे (जाया) उत्पन्न हुए सर्प (जलिय) जलती हुई (धूमकेउ) धूआ निकलती हुई (दुरासय) कठिनाई से सहने योग्य (जोइ) अग्नि मे (पक्खदे) गिर जाते हैं किन्तु (वतय) वमन किये हुए विष को (भोत्तु) भोगने की (न इच्छति) इच्छा नही करते ॥६॥

भावार्थः— सती राजमती रथनेमि को कहती है कि अग-

घन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प अग्नि में जलकर मर जाना तो पसद करते हैं किन्तु उगले हुए विष को पुन पीना नही चाहते ।

घिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वतं इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण-भवे ॥७॥

अन्वयार्थः— (अजसोकामी) हे अपयश के इच्छुक ! (ते) तुझे (घिरत्थु) धिक्कार हो (जो) जो (त) तू (जीविय-कारणा) असयम रूप जीवन के लिए (वंत) वमन किये हुए को (आवेउ) पीना (इच्छसि) चाहता है इसकी अपेक्षा तो (ते) तेरे लिए (मरणं) मर जाना (सेय) श्रेष्ठ (भवे) है ॥७॥

भावार्थ— सती राजमती चचलचित्त बने हुए रथनेमि को सयम मे स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि सयम धारण करके असयम मे आना निन्दनीय है । ऐसे असंयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो सयमावस्था मे मृत्यु हो जाना अच्छा है ।

अह च भोगरायस्स, तं चऽसि अधगवण्हिणो ।
मा कुले गघणा होमो, सजम निहुओ चर ॥८॥

अन्वयार्थः—(अहच) मैं राजमती (भोगरायस्स) भोज-राज—उग्रसेन की पुत्री हूं (च) और (त) तू (अधगवण्हिणो) अन्धकवृष्णि—समुद्रविजय का पुत्र (असि) है (गधणाकुले) गन्वन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प के समान (मा होमो) मत हो किन्तु (निहुओ) मन को स्थिर रखकर (सजम) सयम का (चर) पालन कर ॥८॥

भावार्थः— राजमती रथनेमि मे कहती है कि अपन दोनो उच्चकुल मे उत्पन्न हुए हैं । अत उगले हुए विष को वापस पी जाने वाले गन्धन कुल के साप के समान न होना चाहिए ।

जइ त काहिसि भाव, जा जा दिच्छसि नारीग्रो ।
वायाविद्धु व्वहडो, ग्रट्ठिग्रप्पा भविस्ससि ॥९॥

ग्रन्वयार्थः— (त) हे मुनि ! तुम (जा जा) जिन जिन (नारीग्रो) स्त्रियो को (दिच्छसि) देखोगे (जइ) यदि उन-उन पर (भाव) बुरे भाव (काहिसि) करोगे तो (वायाविद्धु-विद्धो) वायु से प्रेरित (हडो व्व) हड नामक वनस्पति की भाति (ग्रट्ठि-ग्रप्पा) अस्थिर आत्मा वाले (भविस्ससि) हो जाओगे ॥९॥

भावार्थ— राजमती रथनेमि से कहती है कि हे मुनि ! जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम मोहित हो जाओगे तो जैसे समुद्र के किनारे खडा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक ही झोके से समुद्र मे गिर पडता है वैसे ही तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायेगी ।

तीसे सो वयण सोच्चा, सजयाइ सुभासिय ।
ग्रकुसेण जहा नागो, धम्मे सपडिवाइग्रो ॥१०॥

ग्रन्वयार्थः—(सो) वह रथनेमि (तीसे) उस (सजयाइ) सयमवती साध्वी के (सुभासिय) सुभाषित (वयण) वचन को (सोच्चा) सुनकर (धम्मे) धर्म मे (सपडिवाइग्रो) स्थिर हो गया (जहा) जैसे (ग्र कुसेण) अँकुश से (नागो) हाथी वश मे हो जाता है ॥१०॥

भावार्थः– ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचनो को सुनकर रथनेमि धर्ममार्ग मे स्थिर हो गये, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे आ जाता है ।

एव करति सबुद्धा, पडिया पवियक्खणा ।
विणियट्ट ति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥त्ति बेमि॥

अन्वयार्थः— (संबुद्धा) तत्वज्ञ (पडिया) पाप से डरने वाले पण्डित (पवियक्खणा) विचक्षण पुरुष (एव) ऐसा ही (करति) करते हैं अर्थात् (भोगेसु) भोगों से (विणियट्टति) निवृत्त हो जाते हैं (जहा) जैसे (से) वह (पुरिसुत्तमो) पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया ॥११॥ (त्तिबेमि) हे जम्बू ! जैसा मैंने भगवान् से सुना है वैसा ही कहता हूं ।

भावार्थः— जो विवेकी होते हैं वे विषयभोगों के दोषों को जानकर उनका परित्याग कर देते हैं जैसे रथनेमि ने परित्याग कर दिया ।

खुड्डियायारकहा नामक तृतीय अध्ययन
(साधु के ५२ अनाचार)

जो निर्ग्रन्थ महर्षियो को आचरण करने योग्य नहीं है ऐसे ५२ अनाचारो का वर्णन इस अध्ययन मे किया गया है ।

सजमे सुट्ठिअप्पाण, विप्पमुक्काण ताइण ।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गथाण महेसिण ॥१॥

अन्वयार्थः — (सजमे) सयम मे (सुट्ठिअप्पाण) भलीभाति स्थिर आत्मा वाले (विप्पमुक्काण) सासारिक बन्धनों से रहित (ताइण) छ काय जीवो के रक्षक (तेसिं) उन (निग्गथाण) परिग्रह रहित (महेसिण) महर्षियो के (एयं) ये आगे कहे जाने वाले (अणाइण्ण) अनाचीर्ण-अनाचार हैं ॥१॥

उद्देसिय कीयगड, नियागमभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गधमल्ले य वीयणे ॥२॥

अन्वयार्थः—१ (उद्देसिय) [1] औद्देशिक, २ (कीयगड) साधु के लिये खरीदा हुआ, ३ (नियाग) किसी का आमत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, ४ (अभिहडाणि)

---

१ किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधाकर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक कहलाता है ।

साधु के लिये सामने लाया हुआ, (य) और ५ (राइभत्ते) रात्रि-भोजन, (य) और ६ (सिणाणे) स्नान, ७ (गध) सुगधित पदार्थों का सेवन, ८ (मल्ले) फूलादि की माला, (य) और ९ (वीयणे) पखादि से हवा लेना ॥२॥

सनिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
सवाहणा दतपहोयणा य, सपुच्छणा देहपलोयणा य ॥३॥

अन्वयार्थः— १० (सनिही) घी गुड आदि वस्तुओ का सचय करना, ११ (गिहिमत्ते) गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना, (य) और १२ (रायपिंडे) राजपिंड का ग्रहण करना, १३ (किमिच्छए) 'तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछ कर जहा उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, १४ (सवाहणा) मर्दन करना, (य) और १५ (दतपहोयणा) अगुली आदि से दात धोना, १६ (सपुच्छणा) गृहस्थो से सावद्य कुशल प्रश्न आदि पूछना, (य) और १७ (देह-पलोयणा) दर्पण आदि मे मुख देखना ॥३॥

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छ पाहणा पाए, समारभ च जोइणो ॥४॥

अन्वयार्थः— १८ (अट्ठावए) जूआ खेलना (य) और (नालीए) नालिका चौपडपासा शतरज आदि खेलना, (य) और १९ (छत्तस्सधारणट्ठाए) छत्र धारण करना, २० (तेगिच्छ) रोग का इलाज करना, २१ (पाए पाहणा) पैरो मे जूते आदि पहनना, (च) और २२ (जोइणो) अग्नि का (समारभ) आरंभ करना ॥४॥

सिज्जायरपिंड च, आसंदी पलियंकए ।
गिहतर निसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ॥५॥

अन्वयार्थः— २३ (सिज्जायरपिंड) शय्यातर का आहार लेना, (च) और २४ (आसदी) बेंत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, २५ (पलियकए) पलग पर बैठना, २६ (गिहतर-निसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, (य) और २७ (गायस्सुव्वट्टणाणि) मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना।

गिहिणो वेयावडिय, जा य आजीव वत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्ता आउरस्सरणाणि य ॥६॥

अन्वयार्थः— २८ (गिहिणो) गृहस्थ की (वेयावडियं) वैयावच्च करना अर्थात् उसे आहारादि देना, (य) और (जा) जो २९ (आजीववत्तिया) जाति कुल आदि बताकर आजीविका करना, ३० (तत्तानिव्वुडभोइत्तं) जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है ऐसे मिश्र पानी का सेवन करना, (य) और ३१ (आउर-स्सरणाणि) रोग अथवा भूख से पीडित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना ॥६॥

मूलए सिंगवेरे य, उच्छुखडे अनिव्वुडे।
कदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ॥७॥

अन्वयार्थः— ३२ (अनिव्वुडे) सचित्त (मूलए) मूला (य) और ३३ (सिंगवेरे) अदरख-आदा, ३४ (उच्छुखडे) इक्षुखण्ड-गडेरी, (य) और ३५ (कदे) कन्द-वज्रकन्द आदि, ३६ (सच्चित्ते) सचित्त (मूले) मूल जड, ३७ (फले) फल, आम, नीबू आदि (य) और ३८ (आमएबीए) तिलादि सचित्त बीजों का सेवन करना ॥७॥

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥८॥

अन्वयार्थ— ३९ (आमए) सचित्त (सोवच्चले) सोवचंल-सचल नमक, ४० (सिंधवे लोणे) सैन्धव-सीधा नमक, ४१ (रोमालोणे) रोमा नमक-रोमकक्षार, ४२ (सामुद्दे) समुद्र का नमक, (य) और ४३ (पसुखारे) ऊसर नमक, (य) और ४४ (आमए) सचित्त (कालालोणे) काला नमक का सेवन करना ॥८॥

घुवणे त्ति वमणे य, वत्थी कम्म विरेयणें ।
अजणे दतवणे य, गायाब्भंग विभूसणे ॥९॥

अन्वयार्थ— ४५ (घुवणे त्ति) अपने वस्त्र आदि को धूप देकर सुगन्धित करना, (य) और ४६ (वमणे) औषधि आदि से वमन करना, ४७ (वत्थीकम्म) मलादि की शुद्धि के लिए वस्ती कर्म करना, ४८ (विरेयणे) जुलाब लेना, ४९ (अजणे) आँखों में अ जन लगाना, (य) और ५० (दतवणे) दतौन से दात साफ करना, मस्सी आदि लगाना, ५१ (गायाब्भग) सहस्रपाक आदि तैलो से शरीर की मालिश करना, (य) और ५२ (विभूसणे) शरीर को विभूषित करना ॥९॥

सव्वमेयमणाइन्न, निग्गथाण महेसिण ।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूय विहारिण ॥१०॥

अन्वयार्थ— (सजमम्मि) सजम मे (य) और तप में (जुत्ताण) लगे हुए (लहुभूयविहारिण) वायु के समान अप्रतिवन्ध विहार करने वाले (निग्गथाण) निर्ग्रन्थ (महेसिण) महर्षियो के (एय) ये (सव्व) सव (अणाइन्न) अनाचीर्ण-अनाचार हैं ॥१०॥

पचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु सजया ।
पचनिग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदसिणो ॥११॥

अन्वयार्थ.— (पंचासव परिण्णाया) पाच आश्रवो के त्यागी (तिगुत्ता) मन, वचन और काया गुप्ति से युक्त (छसु सजया) छ. काय जीवो के रक्षा करने वाले (पचनिग्गहणा) पाच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले (धीरा) परीषह उपसर्ग सहन करने मे धीर (उज्जुदसिणो) सरल स्वभावी (निग्गथा) निर्ग्रन्थ होते हैं ॥११॥

आयावयति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिया ॥१२॥

अन्वयार्थः— (सुसमाहिया) प्रशस्त समाधिवत (सजया) सयमी मुनि (गिम्हेसु) ग्रीष्म ऋतु मे (आयावयति) सूर्य की आतापना लेते हैं (हेमतेसु) हेमन्त ऋतु मे–शीत काल मे (अवाउडा) अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते है (वासासु) वर्षा ऋतु मे (पडिसलीणा) कछुए की तरह इन्द्रियो को वश करके रहते हैं ॥१२॥

भावार्थ.— जिस ऋतु मे जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है उस ऋतु मे मुनि वही तपस्या करते हैं ।

परीसहरिऊदता, धूअमोहा जिइदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ॥१३॥

अन्वयार्थः— (परीसहरिऊदता) परीषह रूपी शत्रुओ को जीतने वाले (धूअमोहा) मोह ममता के त्यागी (जिइदिया) इन्द्रियो को जीतने वाले (महेसिणो) महर्षि (सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा) सब दु खो का नाश करने के लिए मोक्ष प्राप्ति के लिये (पक्कमंति) पराक्रम करते है, सयम और तप मे प्रवृत्त होते हैं ॥१३॥

दुक्कराइ करित्ताण, दुस्सहाइ सहित्तु य ।
केइत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झन्ति नीरया ॥१४॥

अन्वयार्थः — (दुक्कराइं) दुष्कर क्रियाओ को (करित्ताण) करके (य) और (दुस्सहाइ) दुसह कष्टो को (सहित्तु) सहन करके (केइ) कितनेक (देवलोएसु) देवलोक मे उत्पन्न होते हैं और (केइत्थ) कितनेक इसी भव मे (नीरया) कर्मरज से रहित होकर (सिज्झन्ति) सिद्ध हो जाते हैं, मोक्ष चले जाते हैं ॥१४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, सजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः— (सिद्धिमग्ग) मोक्ष मार्ग के (अणुप्पत्ता) साधक (ताइणो) छ काय जीवो के रक्षक मुनि (सजमेण) सयम से (य) और (तवेण) तप से (पुव्वकम्माइ) पहले बधे हुए कर्मों को (खवित्ता) क्षय करके (परिनिव्वुडे) निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥१५॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

छज्जीवणिया नामक चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन मे छः काय जीवो का स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है—

सुय मे आउस ! तेणं भगवया एवमक्खाय,
इह खलु छज्जीवणीया नामज्झयणं समणेण भगवया
महावीरेणं कासवेण पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता,
सेय मे अहिज्जिउ अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥

अन्वयार्थः— (आउस) हे आयुष्मन् शिष्य ! (मे) मैंने (सुय) सुना है कि (तेण) उन (भगवया) भगवान् ने (एव) इस प्रकार (अक्खाय) कहा है कि (इह) इस जिनशासन मे (खलु) निश्चय से (छज्जीवणिया) छज्जीवणिया–छः काय के जीवो का कथन करने वाला (नाम) नामक (अज्झयण) अध्ययन है (समणेण) श्रमण तपस्वी (कासवेण) काश्यपगोत्रीय (भगवया) भगवान् (महावीरेण) महावीर ने (पवेइया) सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररुपणा की है (सुअक्खाया) सम्यक् प्रकार से कथन किया है (सुपण्णत्ता) भली प्रकार से बतलाया है । शिष्य ने पूछा— भगवन् ! क्या (अज्झयण) उस अध्ययन का (अहिज्जिउ) अध्ययन करना–सीखना (मे)मेरे लिए (सेय) कल्याणकारी है । गुरु ने कहा–हाँ ! (धम्मपण्णत्ती) उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है ।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं,
समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं
पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे,
अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपण्णत्ती ॥

अन्वयार्थः—(कयरा) वह छज्जीवणिया अध्ययन कौनसा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिये कल्याणकारी है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण
समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं
पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे,
अहिज्जिउं अज्झयण धम्मपण्णत्ती ॥

अन्वयार्थ—अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि (इमा) वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।

तजहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया,
वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया ॥

अन्वयार्थ—(तजहा) जैसे कि (पुढविकाइया) पृथ्वी-कायिक-पृथ्वीकाय के जीव (आउकाइया) अप्कायिक-जल के जीव (तेउकाइया) तेउकायिक-अग्निकाय सम्बन्धी जीव (वाउकाइया) वायु के जीव (वणस्सइकाइया) वनस्पति काय के जीव (तसकाइया) त्रस काय के जीव।

पुढवीचित्तामतमक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण। आउ चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढो-सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। तेऊ चित्तामत मक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं। वाऊ

चित्तामंत मक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं । वणस्सई चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं ।

अन्वयार्थ —(सत्थपरिणएण) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (पुढवी) पृथ्वीकाय (आऊ) अपकाय (तेऊ) अग्निकाय (वायु) वायुकाय और (वणस्सई) वनस्पतिकाय (चित्तमत-मक्खाया) सचित्त कही गई है (अणेग जीवा) वह अनेक जीवो वाली है (पुढोसत्ता) उसमें अनेक जीव पृथक्-पृथक् रहे हुए हैं ।

भावार्थः—पाचो स्थावरकाय सचित्त हैं । वे अनेक जीव रूप हैं । उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । इन कायो के जो शस्त्र हैं उनसे जब तक परिणत न हो जांय अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाय तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं । आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते हैं :—

तंजहा—अग्गवीया मूलवीया पोरवीया खघवीया,
वीयरुहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइ
काइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेग
जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं ॥

अन्वयार्थः—(तजहा) वह इस प्रकार है (अग्गवीया) ऐसी वनस्पति जिसका वीज अग्रभाग पर होता है जैसे कोरंट का वृक्ष (मूलवीया) जिसका बीज मूल भाग मे होता है जैसे कद आदि (पोरवीया) जिसका वीज पर्व-गाठ मे होता है जैसे गन्ना ईख आदि (खंधवीया) जिसका बीज स्कन्ध मे होता है जैसे वड़ पीपल आदि (वीयरुहा) वीज से उगने वाली वनस्पति जैसे चोबीस प्रकार के धान्य (संमुच्छिमा) विना बीज के अपने आप

उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे अकुर आदि (तणलया) तृणलता आदि ये सब (वणस्सइकाइया) वनस्पतिकायिक हैं (अणेगजीवा) उसमें अनेक जीव हैं, (पुढोसत्ता) वे भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं। (सत्थपरिणएणं) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (सबीया) बीज सहित वनस्पति (चित्तमतमक्खाया) सचित्त कही गई हैं। अब त्रस काय का वर्णन किया जाता है :—

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तजहा—अडया पोयया जराउया रसया ससेइमा समुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसिं केसिं च पाणाणं अभिक्कत पडिक्कंत संकुचिय पसारिय रुय भत तसिय पलाइय आगइ गइविन्नाया जेय कीडपयगा जा य कुथु पिपीलिया सव्वे बेइन्दिया सव्वे तेइन्दिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चइ।

अन्वयार्थः—(से) अब (जे) जो (इमे) ये आगे कहे जाने वाले (तसापाणा) त्रस प्राणी हैं वे (पुण) फिर (अणेगे) अनेक तथा (बहवे) बहुत प्रकार के हैं। (तंजहा) जैसे कि (अडया) अडे से उत्पन्न होने वाले (पोयया) पोतज जन्म के समय चर्म से आवृत्त होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले (जराउया) जरायुसहित पैदा होने वाले (रसया) रस मे उत्पन्न होने वाले—द्वीन्द्रियादिक (संसेइमा) पसीने से उत्पन्न होने वाले (संमुच्छिमा) समूर्च्छिम-देव नारकी सिवाय-बिना माता पिता के सयोग से होने वाली जीवो की उत्पत्ति (उब्भिया) उद्‌भिज- को फोडकर उत्पन्न होने वाले (उववाइया) उपपात जन्म

वाले देव नारकी आदि (जेसिकेसिच) इनमे से कोई २ (पाणाण) प्राणी (अभिक्कत) सामने आना (पडिक्कत) पीछे सरकना (सकुचिय) शरीर को संकुचित कर लेना (पसारिय) शरीर को फैलाना (रुय) शब्द का उच्चारण करना (भत) इधर-उधर भ्रमण करना (तसिय) भयभीत होना (पलाइय) डर में भागना (आगइगइ) आगति और गति (विन्नाया) आदि क्रियाओ को जानने वाले हैं (य) और (जे) जो (कीडपयगा) कीड़े और पतगिये (य) और (जा) जो (कुथुपिपीलिया) कुथवा और चींटियाँ हैं वे (सव्वे) सब (वेइदिया) द्वीन्द्रिय (सव्वे) सब (तेइदिया) त्रीद्रिय (सव्वे) सब (चउरिंदिया) चतुरिन्द्रिय (सव्वे) सब (पचिंदिया) पचेन्द्रिय (सव्वे) सब (तिरिक्ख-जोणिया) तिर्यंच (सव्वे) सब (नेरइया) नारकी के जीव (सव्वे) सब (मणुआ) मनुष्य (सव्वे) सब (देवा) देव (सव्वे) सब (पाणा) प्राणी (परमाहम्मिया) परमसुख के अभिलाषी हैं। (एसो) यह (खलु) निश्चय करके (छट्ठो) छठा (जीव-निकाओ) जीव निकाय (तस्सकाओत्ति) त्रसकाय (पवुच्चइ) कहा जाता है।

भावार्थ—सभी प्राणी सुख को चाहते है। अत किसी की हिंसा न करनी चाहिए।

मूल—इच्चेसिं छण्ह जीवनिकायाणं नेव सय दड समारभिज्जा, नेवन्नेहिं दड समारभाविज्जा दड समारभतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

अन्वयार्थः—मुनि (इच्चेसिं) इन (छण्हं) छ (जीव-निकायाणं) जीवनिकायो के (दंडं) हिंसा रूप दंड का (सयं) स्वयं (नेव समारंभिज्जा) आरम्भ न करे (अन्नेहिं) दूसरो से (दंडं) हिंसा रूप दंड का (नेव समारंभाविज्जा) आरम्भ न करावे और (दंडं) हिंसा रूप दंड का (समारंभते) आरम्भ करते हुए (अन्नेऽवि) अन्य जीवो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझे। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं (जावज्जीवाए) यावज्जीवन-जीवन पर्यन्त (तिविहं) तीन करण से—करना, कराना और अनुमोदना से और (तिविहेणं) तीन योग से अर्थात् (मणेणं) मन से (वायाए) वचन से और (काएणं) काया से (न करेमि) न करूंगा (न कारवेमि) न कराऊंगा और (करंतंपि) करते हुए (अन्नं) दूसरे को (न समणुजाणामि) भला भी नहीं समझूंगा। (भंते) हे भगवन्! (तस्स) उस दंड का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूं (निंदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूं (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं। (अप्पाणं) हिंसा दंड सेवन करने वाले पापात्मा को (वोसिरामि) त्यागता हूं॥

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा नेव अन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंतेऽवि अन्ने न समणु-जाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणु-जाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥१॥

अन्वयार्थः—(भंते) हे पूज्य-हे भगवन् ! (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत मे (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमण) विरमण निवर्तन होता है-अत (भते) हे भगवन् मैं (सव्व) सब प्रकार की (पाणाइवाय) प्राणातिपात रूप हिंसा का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू (से) अब से लेकर (सुहुम) सूक्ष्म (वा) अथवा (बायर) बादर (तस) त्रस (वा) अथवा (थावर) स्थावर प्राणियो के (पाणे) प्राणो को (सय) स्वय (न अइवाइज्जा) हनन नहीं करूंगा और (नेव) न (अन्नेहिं) दूसरो से (पाणे) प्राणियों के प्राणों का (अइवायाविज्जा) हनन कराऊंगा (पाणे) प्राणियो के प्राणो का (अइवायते) हनन करने वाले (अन्नेऽवि) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी नही जानूंगा (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) तीन करण से करना, कराना, अनुमोदना से (तिविहेण) तीन योग से अर्थात् (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करूंगा (न कारवेमि) न कराऊंगा (करतपि) करते हुए (अन्ने) दूसरो को (न (समणुजाणामि) भला भी नहीं समझूंगा। (भते) हे भगवन् ! मैं (तस्स) उस हिंसा रूपी पाप से (पडिक्कमामि) निवृत्त होता हूं (निंदामि) उस पाप की निन्दा करता हूं (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं (अप्पाण) हिंसा रूप दंड सेवन करने वाले आत्मा को (वोसिरामि) त्यागता हू। (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ) सब (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमणं) निवृत्ति रूप (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू।

भावार्थ—शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रत के विषय मे सावधान होता हू और पूर्वकाल में

किए हुए हिंसा सम्बन्धी पाप से निवृत्त होता हूं ।

अहावरे दुच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा नेवऽन्नेहिं मुसं वाया-विज्जा मुसं वयंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जी-वाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (मुसावायाओ) मृषावाद असत्य से (वेरमणं) निवर्तन होता है । अतः (भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्वं) सब प्रकार के (मुसावायं) मृषावाद का (पच्चक्खामि) त्याग करता हूं । (से) वह इस प्रकार (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा (लोहा वा) लोभ से (भया वा) भय से अथवा (हासा वा) हंसी से (सयं) मैं स्वयं (मुसावायं) असत्य (नेव वइज्जा) नहीं बोलूंगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरों से (मुसं) असत्य (वायाविज्जा) बोलाऊंगा (मुसं) असत्य (वयं-तेऽवि) बोलते हुए (अन्ने) दूसरों को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूंगा (जावज्जीवाए से वोसिरामि) तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । (भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ) सब (मुसावायाओ) मृषावाद को (वेरमणं) त्याग रूप (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हूं ।

भावार्थः—शिष्य दूसरे महाव्रत को स्वीकार करने की

प्रतिज्ञा करता है ।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा रण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥

अन्वयार्थः—(भंते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत में (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमणं) निवर्तन होता है-अतः-(भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्वं) सब प्रकार के (अदिन्नादाणं) अदत्तादान-चोरी का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हूं (से) वह इस प्रकार कि (गामे) ग्राम में (वा) अथवा (नगरे वा) नगर में अथवा (रण्णे वा) जंगल में (अप्पं वा) अल्प अथवा (बहुंवा) बहुत (अणुं) सूक्ष्म (वा) अथवा (थूलंवा) स्थूल (चित्तमंतंवा) सचेतन अथवा (अचित्तमंतं वा) अचेतन-आदि किसी भी (अदिन्नं) बिना दिये हुए पदार्थ को (सयं) मैं स्वयं (नेवगिण्हिज्जा) ग्रहण नहीं करूंगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरों से (अदिन्नं) बिना दिये हुए पदार्थ को (गिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊंगा और (अदिन्नं) बिना दिये हुए पदार्थ को (गिण्हंते वि) ग्रहण करते हुए (अन्ने) दूसरों को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न

समभूगा । (जावज्जीवाए से वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है (भते) हे भगवन् ! मैं (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमण) निवृत्तिरूप (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू और उसकी प्रतिज्ञा करता हूं।

अहावरे चउत्थे भते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमण, सव्वं भते ! मेहुण पच्चक्खामि से दिव्व वा माणुस वा तिरिक्ख जोणिय वा नेव सय मेहुण सेविज्जा नेवऽन्नेहिं मेहुण से वाविज्जा मेहुण सेवतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। चउत्थे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण ॥

अन्वयार्थः—(भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके वाद (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत मे (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमण) निवर्तन होता है । अत. (भते) हे भगवन् मैं (सव्व) सब प्रकार के (मेहुण) मैथुन का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हू (से) वह इस प्रकार कि (दिव्व) देव सम्बन्धी (वा) अथवा (माणुसवा) मनुष्य सम्बन्धी अथवा (तिरिक्खजोणियं वा) तिर्यंच सम्बन्धी-इन तीनो जातियों मे किसी के भी साथ (मेहुण) मैथुन को (सय) मैं स्वय (नेवसेविज्जा) सेवन नहीं करूगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरो से (मेहुण) मैथुन (सेवाविज्जा) सेवन कराऊगा और (मेहुण) मैथुन (सेवतेऽवि) सेवन करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समभूगा (जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ)

सव प्रकार के (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमण) निवृत्तिरूप (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू और प्रतिज्ञा करता हू ।

अहावरे पचमे भते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमण, सव्व भते ! परिग्गह पच्चक्खामि से -अप्प वा वहु वा अणु वा थूल वा चितमत वा अचित्तमत वा नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । पचमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (पंचमे) पाचवें (महव्वए) महाव्रत मे (परिग्गहाओ) परिग्रह से (वेरमण) निवर्तन होता है । अन (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्व) सब प्रकार के (परिग्गह) परिग्रह को (पच्चक्खामि) त्यागता हू (से) वह इस प्रकार है (अप्प वा) अल्प अथवा (वहु वा) वहुत (अणु वा) सूक्ष्म अथवा (थूल वा) स्थूल (चित्तमत वा) सचेतन (अचित्तमतवा) अथवा अचेतन (परिग्गह) परिग्रह को (सय) मैं स्वय (नेव परिगिण्हिज्जा) ग्रहण नहीं करुगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरो से (परिग्गह) परिग्रह को (परिगिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊगा (परिग्गह) परिग्रह को (परिगिण्हतेऽवि) ग्रहण करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूगा

(जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। (भते) हे भगवन्! मैं (सव्वाओ) सब प्रकार के (परिग्ग-हाओ) परिग्रह से (वेरमण) निवर्तन रूप (पचमे) पाचवें (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू॥

भावार्थः—शिष्य सब प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पाचवें महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भते! वए राइभोयणाओ वेरमण, सव्वं भते! राइभोयण पच्चक्खामि से असण वा पाणं वा खाइमं वा साइम वा नेव सय राइ भुजिज्जा नेवन्नेहिं राइ भुजा-विज्जा राइ भुजतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कार-वेमि करतंपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। छट्ठे भते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमण। इच्चेयाइ पच महव्वयाइ राइभोयणवेरमणछट्ठाइ अत्तहिय-ट्ठयाए उवसपज्जित्ता ण विहरामि॥

अन्वयार्थः—(भते) हे भगवन्! (अहावरे) इसके बाद (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन का (वेरमण) त्याग होता है अत (भते) हे भगवन्! मैं (सव्व) सब प्रकार के (राइभोयण) रात्रिभोजन का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू। (से) वह इस प्रकार है कि (असण वा) अन्नादि, अथवा (पाण वा) पानी आदि अथवा (खाइम वा) खाद्य, मेवा अथवा (साइम वा) स्वाद्य-लोग, इलायची आदि (सय) मैं स्वय (राइ) रात्रि मे (नेव) नही (भुजिज्जा 'भुजेज्जा') खाऊगा (नेवन्नेहिं) न दूसरो को (राइ) रात्रि

मे (भुंजाविज्जा) खिलाऊंगा और (राइ) रात्रि मे (भुंजते-ऽवि) भोजन करने वाले (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूंगा। (जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। (भंते) हे भगवन्! मैं (सव्वाओ) सब प्रकार के (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन से (वेरमण) निवृत्ति रूप (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (उवट्ठि-ओमि) उपस्थित होता हू।

(इच्चेयाइ) ये पहले कहे हुए (पच महव्वयाइ) पांच महाव्रतो को और (राइभोयण वेरमण छट्ठाइ) रात्रि-भोजन विरमण रूप छट्ठे व्रत को (अत्तहियट्ठयाए-यट्ठियाए) आत्मकल्याण के लिए (उवसपज्जित्ताण) स्वीकार करके मैं (विहरामि) सयम मे विचरता हू।

भावार्थ—अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिंसा आदि पाच महाव्रतो को और छठे रात्रिभोजन त्याग रूप व्रत को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छ काय के जीवो की रक्षा के बिना चारित्र धर्म का पालन नही हो सकता। अत छ काय के जीवो की रक्षा के विषय मे सूत्रकार कहते हैं:—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्ख वा काय ससरक्ख वा वत्थ हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अगुलियाए वा सिलागाए वा सिलाग हत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्न न आलिहावि-

ज्जा न विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा, अन्न आलिहत वा विलिहत वा घट्टत वा भिदत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

अन्वयार्थः—(सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे) सयमी, पाप से विरक्त, कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप कर्मों के बन्ध का प्रत्याख्यान करने वाला (से) वह पूर्वोक्त महाव्रतो को धारण करने वाला (भिक्खू) साधु (वा) अथवा (भिक्खूणी वा) साध्वी (दिया वा) दिन मे अथवा (राओ वा) रात्रि मे (एगओ वा) अकेला अथवा (परिसागओ वा) साधु समूह मे (सुत्ते वा) सोते हुए (जागरमाणे वा) अथवा जागते हुए (से) इस प्रकार (पुढवि वा) पृथ्वी को अथवा (भित्तिवा) दीवार को (सिलवा) शिला को अथवा (लेलु वा) ढेले को (ससरक्खवाकाय) सचित्त रज सहित शरीर को अथवा (ससरक्ख वा वत्थ) सचित्त रज सहित वस्त्रो को (हत्थेण वा) हाथ से अथवा (पाएण वा) पैर से (कट्ठेण वा) लकडी से अथवा (किलिंचेण वा) दडे से (अगुलियाए वा) अगुलि से अथवा (सिलागाए वा) लोहे की छड़ से अथवा (सिलागहत्थेण वा) लाहे की छडियो के समूह से (न आलिहिज्जा) सचित्त पृथ्वी पर लिखे नही (न विलिहिज्जा) विशेष लिखे नही (न घट्टिज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर गेरे नही (न भिंदिज्जा) भेदन न करे (अन्न) दूसरे से (न आलिहाविज्जा) लिखावे नही (न विलिहाविज्जा) विशेप औरो से लिखावे नही (न घट्टाविज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर

गिरावे नहीं (न भिंदाविज्जा) भेदन न करावे (आलिहत वा) लिखने वाले (विलिहत वा) विशेष लिखने वाले (घट्टत वा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले (भिंदत वा) भेदन करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि) भला भी न समझे। शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविह) तीन करण से और (तिविहेण) तीन योग से (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करूंगा (न कारवेमि) न कराऊंगा (करतपि) करते हुए (अन्न) दूसरो को (न समणुजाणामि) भला भी न समझूंगा। (भंते) हे भगवन् ! मैं (तस्स) उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से (पडिक्कमामि) पृथक् होता हूं (निंदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा करता हू (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं (अप्पाण) ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को (वोसिरामि) हटाता हूं।

भावार्थ—इस सूत्र मे पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है। अब आगे के सूत्र मे अप्काय की यतना का वर्णन किया जायगा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदग वा ओस वा हिम वा महिय वा करग वा हरितणुग वा सुद्धोदग वा उदउल्ल वा काय उदउल्ल वा वत्थ ससिणिद्ध वा काय ससिणिद्ध वा वत्थ न आमुसिज्जा न सफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा अन्न न आमुसा-

विज्जा न सफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीला-
विज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आया-
विज्जा न पयाविज्जा अन्न आमुसत वा संफुसत वा
आवोलत वा पवीलत वा अक्खोडत वा पक्खोडत वा
आयावत वा पयावत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए
तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न
कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते !
पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ —"से भिक्खूवा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है' साधु अथवा साध्वी (उदगवा) जल को (ओसवा) ओस को (हिमवा) बफ को (महिय वा) धूवर के पानी को (करग वा) ओले के पानी को (हरितणुगवा—हरत-णुगवा) हरियाली पर पडे हुए जल बिन्दुओ को (सुद्धोदग वा) आकाश से गिरे हुए जल को (उदउल्ल वा काय) जल से भीगे हुए शरीर को (उदउल्ल वा वत्थ) जल से भीगे हुए वस्त्र को (ससिणिद्ध वा काय) कुछ कुछ भीगे हुए शरीर को (ससिणिद्ध वा वत्थ) कुछ कुछ भीगे हुए वस्त्र को (न आमुसिज्जा) जरा भी स्पर्श न करे (न सफुसिज्जा) अधिक स्पर्श न करे (न आवीलिज्जा) एक बार न दबावे निचोडे (न पवीलिज्जा) बार बार न दबावे निचोडे (न अक्खोडिज्जा) न झाड़े (न पक्खोडिज्जा) बार बार न झाडे (न आयाविज्जा) न सुखावे (न पयाविज्जा) बार बार न सुखावे (अन्न) दूसरे से (न आमुसाविज्जा) जरा भी स्पर्श न करावे (न सफुसाविज्जा) बार बार स्पर्श न करावे (न आवीलाविज्जा) न निचोडवावे (न पवीलाविज्जा) बार बार न निचोडवावे (न अक्खोडाविज्जा) झडकावे नही (न पक्खोडाविज्जा) बार बार झडकावे

नही (न आयाविज्जा) न सुकवावे (न पयाविज्जा) बार बार न सुकवावे तथा (आमुसत वा) जरा भी स्पर्श करने वाले (सफुसत वा) बार बार स्पर्श करने वाले (आवीलत वा) दवाने वाले-निचोडने वाले (पवीलत वा) बार बार दबाने वाले-निचोडने वाले (अक्खोडन वा) झटकाने वाले (पक्खोडंत वा) बार बार झडकाने वाले (आयावत वा) सुकाने वाले (पयावत वा) बार बार सुकाने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला न समझे। (जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि') तक का पूर्ववत् अर्थ है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणि वा इगाल वा मुम्मुर वा अच्चि वा जाल वा अलाय वा सुद्धागणि वा उक्क वा न उजिज्जा न घटिज्जा न भिदिज्जा न उज्जालिज्जा न पज्जालिज्जा न निव्वाविज्जा अन्न न उजाविज्जा न घटाविज्जा न भिदाविज्जा न उज्जालाविज्जा न पज्जालाविज्जा न निव्वाविज्जा अन्न उज्जत वा घट्टत वा भिदत वा उज्जालत वा पज्जालत वा निव्वावत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

अन्वयार्थः—"से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।" साधु अथवा साध्वी (अगणि वा) अग्नि को (इगाल वा) अंगारे को (मुम्मुर वा) चिनगारी, बकरी आदि के मीगणो की अग्नि को (अच्चि वा) दीपक की शिखा की

अग्नि को (जाल वा) अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को (अलाय वा) सिलगता हुआ कडा या काष्ठ की अग्नि को (सुद्धागणि वा) काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को (उक्क वा) उल्का- पात रूप अग्नि को (न उजिज्जा) ईंधन डालकर न बढावे (न घट्टिज्जा) सघट्टा न करे (न भिदिज्जा) छिन्न-भिन्न न करे (न उज्जालिज्जा) जरा भी न जलावे (न पज्जालिज्जा) प्रज्वलित न करे (न निव्वाविज्जा) न बुझावे (अन्न) दूसरे से (न उजाविज्जा) ईंधन डालकर न बढवावे (न घट्टाविज्जा) संघट्टा न करवावे (न भिदाविज्जा) छिन्न-भिन्न न करवावे (न उज्जालाविज्जा) न जलवावे (न पज्जालाविज्जा) प्रज्व- लित न करवावे (न निव्वाविज्जा) न बुझवावे तथा (उजत वा) ईंधन डालकर बढाने वाले (घट्टत वा) सघट्टा करने वाले (भिदत वा) छिन्न-भिन्न करने वाले (उज्जालत वा) जलाने वाले (पज्जालत वा) प्रज्वलित करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसि- रामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अब वायुकाय की यतना के विषय मे वर्णन किया जाता है.—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय विरय पडिहय पच्च- क्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से सिएण वा विहुयणेण वा तालियटेण वा पत्तेण वा पत्तभगेण वा साहाए वा साहा- भगेण वा पिहुणण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेल- कन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा काय वाहिर वा वि पुग्गल न फुमिज्जा न वीएज्जा अन्न न फुमा- विज्जा न वीआविज्जा अन्न फुमत वा वीअत वा न

समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ — 'से भिक्खू वा से जागरमाणे" तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । साधु अथवा साध्वी (सिएण वा) चामर से (विहुयणेण वा) पखे से (तालियंटेण वा) ताड वृक्ष के पखे से (पत्तेण वा) पत्तो से (पत्तभगेण वा) पत्तों के टुकडो से (साहाए वा) शाखा से (साहाभगेण वा) शाखा के टुकडो से (पिहुणेण वा) मोर के पखो से (पिहुणहत्थेण वा) मोर-पिच्छी से (चेलेण वा) वस्त्र से (चेलकन्नेण वा) कपडे के पल्ले से (हत्थेण वा) हाथ मे (मुहेण वा) मुख से (अप्पणो) अपने (काय) शरीर को (वा) अथवा (बाहिर वा वि) बाहरी पुद्गलों को (न फुमिज्जा) फूक न मारे (न वीएज्जा) पखे आदि से हवा न करे (अन्न) दूसरे से (न फुमाविज्जा) फूक न लगवावे (न वीआविज्जा) पखे आदि से हवा न करावे (फुमत वा) फूक देने वाले (वीअत वा) हवा करने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे । 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है —

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से बीएसु वा बीय पइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्न-

पइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुअट्टिज्जा अन्न न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीआविज्जा न तुअट्टाविज्जा अन्न गच्छंत वा चिट्ठंत वा निसीअंतं वा तुअट्टंत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थः— 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (बीएसु वा) बीजो पर (बीयपइट्ठेसु वा) बीजो पर रखे हुए शयन आसन आदि पर (रूढसु वा) बीज उगकर जो अंकुरित हुए हो उन पर (रूढपइट्ठेसु वा) अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (जाएसु वा) पत्ते आने के अवस्था वाली वनस्पति पर (जायपइट्ठेसु वा) पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (हरिएसु वा) हरी दूब आदि पर (हरियपइट्ठेसु वा) हरी दूब आदि पर रखे हुए आसन आदि पर (छिन्नेसु वा) वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर (छिन्नपइट्ठेसु वा) वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर रखे हुए आसनादि पर (सचित्तेसु वा) ऐसी वनस्पति जिस पर अण्डा आदि हो (सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा) घुन लगे हुए काठ पर (न गच्छेज्जा) न चले (न चिट्ठेज्जा) खडा न होवे (न निसीइज्जा) न बैठे (न तुअट्टिज्जा) न सोवे (अन्न) दूसरे को (न गच्छाविज्जा) न चलावे (न चिट्ठाविज्जा) न खड़ा करे (न निसीआविज्जा) न बैठावे (न तुअट्टाविज्जा) न सुलावे (गच्छंत वा) चलते हुए (चिट्ठंत वा) खडे हुए (निसीअंत

वा) बैठने हुए (तुअट्टं तं वा) सोते हुए (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न जाने। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूववत् है। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है--

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिग्रा वा राग्रो वा एगग्रो वा परिसागग्रो वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीड वा पयग वा कुथु वा पिपीलिय वा हत्थसि वा पायसि वा बाहुसि वा ऊरु सि वा उदरंसि वा सीससि वा वत्थसि वा पडिग्गहसि वा कबलसि वा पायपुच्छणसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगसि वा उडगसि वा दडगसि वा पीढगसि वा फलगसि वा सेज्जसि वा सथारगसि वा अन्नयरसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तग्रो सजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगतमवणिज्जा नो ण सघायमावज्जेज्जा ॥

अन्वयार्थ :— 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (कीड वा) कीडे-मकोडे को (पयग वा) पतगे को (कुथु वा) कुथवा को (पिपीलिय वा) पिपीलिका-चीटी को (हत्थसि वा) हाथ पर (पायसिवा) पैर पर (बाहुसि वा) भुजा पर (ऊरु सि वा-ऊरसि वा) जाघ पर (उदरसि वा) पेट पर (सीससि वा) सिर पर (वत्थसि वा) वस्त्र पर (पडिग्गहसि वा) पात्र पर (कबलसि वा) कम्बल पर (पायपुच्छणसि वा) पैर पोंछने के उपकरण विशेष पर (रयहरणसि वा) रजोहरण पर (गोच्छगसि वा-गुच्छगसि वा) पूजनी पर या पात्रों को पोंछने के वस्त्र पर (उडगसि

वा) स्थण्डिल पात्र पर (दडगसि वा) दडे पर (पीढगसि वा) चौकी पर (फलगसि वा) पाटे पर (सेज्जासि वा) शय्या पर (सथारगसि वा) सथारे पर (वा) अथवा (तहप्पगारे) इसी प्रकार के (अन्नयरसि वा) किसी दूसरे (उवगरणजाए) उपकरण पर पडे हुए कीडे आदि जीव को (तओ) उस स्थान से अर्थात् हाथ पैर आदि पर से (सजयामेव) यतना पूर्वक (पडिलेहिय पडिलेहिय) बार बार अच्छी तरह से प्रतिलेखना करके (पमज्जिय पमज्जिय) बार-बार सम्यक् प्रकार से पूंजकर एगत) एकान्त स्थान मे (अवणिज्जा) रख दे किन्तु उन जीवो को (नो ण सघायमावज्जेज्जा) पीडा पहुचे इस तरह से इकट्ठा करके न रखे ।

अजय चरमाणो अ पाणाभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥१॥

अजय चिट्ठमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ॥२॥

अजय आसमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥३॥

अजय सयमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ।४॥

अजय भुजमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥५॥

अजय भासमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावयं कम्म, त से होइ कडुय फल ॥६॥

अन्वयार्थ :— (अजय) अयतना पूर्वक (चरमाणो) चलता हुआ (चिट्ठमाणो) खड़ा होता हुआ (आसमाणो) बैठता हुआ (सयमाणो) सोता हुआ (भुंजमाणो) भोजन करता हुआ और (भासमाणो) बोलता हुआ व्यक्ति (पाणभूयाइं) त्रस स्थावर जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (अ) जिससे (पावय) पाप (कम्म) कर्म का (बधइ) बन्ध होता है (त) वह पाप कर्म (से) उस प्राणी के लिए (कडुय) कटुक (फल) फलदायी (होइ) होता है ॥१-६॥

भावार्थ .— इन छ गाथाओ मे अयतनापूर्वक चलने, खडा रहने, बैठने, सोने आदि का कड़ुआ फल बतलाया गया है जो स्वय उसी आत्मा को भोगना पड़ता है ।

कह चरे कह चिट्ठे, कहमासे कह सए ।
कह भुंजतो भासतो, पाव कम्म न बधइ ।७॥

अन्वयार्थ :— अब शिष्य प्रश्न करता है कि—हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो मुनि (कह) कैसे (चरे) चले (कह) कैसे (चिट्ठे) खडा रहे (कह) कैसे (आसे) बैठे (कह) कैसे (सए) सोवे (कह) कैसे (भुंजतो) भोजन करता हुआ और (कह) कैसे (भासतो) बोलता हुआ (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नहीं (बधइ) बांधता है ॥७॥

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए ।
जय भुंजतो भासतो, पावं कम्म न बधइ ॥८।

अन्वयार्थ :— गुरु उत्तर देते हैं कि (जयं) यतनापूर्वक (चरे) चले (जय) यतनापूर्वक (चिट्ठे) खडा रहे (जय) यतनापूर्वक (आसे) बैठे (जय) यतना पूर्वक (सए) सोवे (जय)

यतनापूर्वक (भुंजतो) भोजन करता हुआ और (जयं) यतना पूर्वक (भासतो) बोलता हुआ (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नहीं (बंधइ) बांधता है ॥८॥

सव्व भूयप्प भूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पाव कम्मं न बंधइ ॥६॥

अन्वयार्थ :— (सव्वभूयप्पभूयस्स) संसार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझने वाले (सम्मं) सम्यक् प्रकार से (भूयाइ) सब जीवो को (पासओ) देखने वाले (पिहियासवस्स) आश्रवो को रोकने वाले और (दंतस्स) इन्द्रियो को दमन करने वाले के (पाव) पाप (कम्म) कर्म (न) नहीं (बंधइ) बांधता है ॥६॥

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।
अन्नाणी किं काही किं वा नाही सेय पावगं ॥१०॥

अन्वयार्थ :— (पढमं) पहले (नाणं) ज्ञान है (तओ) उसके पश्चात् (दया) दया है (एवं) इस प्रकार (सव्व संजए) सब साधु (चिट्ठइ) आचरण करते हैं । (अन्नाणी) सम्यग् ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष (किं) क्या (काही) कर सकता है और (किंवा) कैसे (सेय छेय पावगं) पुण्य और पाप को (नाही) जान सकता है ।

भावार्थ :— सब से पहिला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया का है । ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । अज्ञानी जिसे साध्य साधन का भी ज्ञान नहीं है वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग ।
उभय पि जाणइ सोच्चा, ज सेय त समायरे ॥११।

अन्वयार्थः- (सोच्चा) सुनकर ही (कल्लाण) कल्याण को (जाणइ) जानता है (सोच्चा) सुनकर ही (पावग) पाप को (जाणइ) जानता है और (उभयपि) दोनो को-पुण्य पाप को भी (सोच्चा) सुनकर ही (जाणइ) जानता है-अत -(ज) जो (सेय) आत्मा के लिये हितकारी हो (त) उसका (समायरे) आचरण करे ॥११॥

भावार्थ — हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है। इसलिए इनमें से जो श्रेष्ठ हो उसी मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ ।
जीवा जीवे अयाणतो, कह सो नाहीइ सजम ॥१२॥

अन्वयार्थ — (जो) जो (जीवे वि) जीव के स्वरूप को (न) नही (याणेइ) जानता और (अजीवे वि) अजीव के स्वरूप को भी (न) नही (याणेइ) जानता । (जीवाजीवे) इस प्रकार जीवाजीव के स्वरूप को (अयाणंतो) नही जानने वाला (सो) वह साधक (सजम) सयम को (कह) कैसे (नाहीइ) जानेगा अर्थात् नही जान सकता ॥१२॥

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ ।
जीवा जीवे वियाणतो, सो हु नाहीइ सजम ॥१३।

अन्वयार्थ — (जो) जो (जीवे वि) जीव का स्वरूप (वियाणेइ-वियाणइ) जानता है तथा (अजीवे वि) अजीव का स्वरूप भी (वियाणेइ) जानता है । इस प्रकार (जीवाजीवे) जीव और अजीव के स्वरूप को (वियाणतो) जानने वाला (सो)

वह साधक (हु) निश्चय ही (संजमं) संयम के स्वरूप को (नाहीइ) जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दोवि एए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं, सव्व जीवाण जाणइ ॥१४॥

अन्वयार्थ :— (जया) जब आत्मा (जीवमजीवे) जीव और अजीव (एए) इन दोनो को (वियाणाइ) जान लेता है (तया) तब (सव्व जीवाण) सब जीवों की (बहुविहं) बहुत भेदो वाली (गइ) नर तिर्यंच आदि नाना विध गति को भी (जाणइ) जान लेता है ॥१४॥

भावार्थ :— इस गाथा मे तथा आगे की गाथाओं में ज्ञान-प्राप्ति से लेकर मोक्षप्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥१५॥

अन्वयार्थः— (जया) जब आत्मा (सव्व जीवाण) सब जीवों की (बहुविय) बहुत भेदो वाली (गइं) नरक तिर्यंच आदि नाना विध गति को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बंधं) बंध (च) और (मुक्खं) मोक्ष को भी (जाणइ) जान लेता है ॥१५॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे अ माणुसे ॥१६॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बंधं) बन्ध (च) और (मुक्खं)

मोक्ष को भी (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब (जे दिव्वे) जो देव सम्बन्धी (अ) और (जे माणुसे) जो मनुष्य सम्बन्धी (भोए) कामभोग हैं उनकी (निव्विदए) असारता को समझ कर उन्हें छोड देता है ॥१६॥

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे अ माणुसे।
तया चयइ सजोगं, सब्भितरबाहिर ॥१७॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (जे दिव्वे) जो देव (अ) और (जे माणुसे) मनुष्य सम्बन्धी (भोए) काम भोगों की (निव्विदए) असारता को समझकर उन्हें छोड देता है। (तया) तब (सब्भितरबाहिरं) राग-द्वेष कषाय रूप आभ्यान्तर और माता-पिता तथा सपत्ति रूप बाह्य (सजोग-सभोगं) सयोग को (चयइ) छोड देता है।

जया चयइ सजोग, सब्भितरबाहिरं।
तया मुण्डे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारिय ॥१८॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (सब्भितरबाहिरं) आभ्यन्तर और वाह्य (संजागं-सभोग) सयोग को (चयइ) छोड देता है। (तया) तव (मुण्डे) द्रव्य और भाव से मुण्डित (भवित्ताण) होकर (अणगारिय) अणगार वृत्ति को (पव्वइए) ग्रहण करता है ॥ १८ ॥

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवर मुक्किट्ठ, धम्म फासे अणुत्तर ॥१९॥

अन्वयार्थ— (जया) जब (मुण्डे) द्रव्य और भाव से मुण्डित (भवित्ताण) होकर (अणगारिय) अणगार वृत्ति को (पव्वइ) ग्रहण करता है (तया) तब (उक्किट्ठं) उत्कृष्ट और

(अणुत्तर) प्रधान सर्वश्रेष्ठ (संवर धम्मं) संवर-चारित्र धर्म को (फासे) स्पर्श करता है– अर्थात् प्राप्त करता है ॥१६॥

जया संवर मुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहि कलुसं कडं ॥२०॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (उक्किट्ठं) उत्कृष्ट और (अणुत्तर) प्रधान (संवर धम्म) संवर धर्म को (फासे) प्राप्त करता है। (तया) तब (अबोहि कलुस कडं) आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किए हुए (कम्मरयं) कर्मरूपी रज को (धुणइ) झाड देता है – अर्थात् दूर कर देता है ॥२०॥

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहि कलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥२१॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (अबोहि कलुस कडं) आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए (कम्मरयं) कर्म रूपी रज को (धुणइ) झाड़ देता है। (तया) तब (सव्वत्तगं) सब पदार्थों को जानने वाले (नाणं) ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान (च) और (दंसणं) केवल दर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (सव्वत्तगं) सब पदार्थों को जानने वाले (नाणं) ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान (च) और (दंसणं) केवलदर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त कर लेता है (तया) तब (जिणो) राग-द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर

(लोग) लोक (च) और (अलोगं) अलोक के स्वरूप को भी (जाणइ) जान लेता है ॥२२॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

अन्वयार्थ.— (जया) जब (जिणो) राग-द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर (लोगं) लोक (च) और (अलोग) अलोक को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब आत्मा (जोगे) मन वचन काया के योगों का (निरुभित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है ॥२३॥

जया जोगे निरुभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥२४॥

अन्वयार्थः— (जया) जब (जोगे) मन वचन काया के योगों का (निरुभित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है। (तया) तब आत्मा (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्म) समस्त कर्मों का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है। २४॥

जया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

अन्वयार्थः – (जया) जब (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्म) समस्त कर्मों का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है। (तया) तब आत्मा (लोगमत्थयत्थो) लोक के अग्रभाग पर स्थित (सासओ) शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) हो जाता है। २५॥

सुह सायगस्स समणस्स, साया उलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥२६॥

अन्वयार्थः— (सुहसायगस्स) सुख में आशक्त रहने वाले (सायाउलगस्स] सुख के लिए व्याकुल रहने वाले (निगाम-साइस्स) अत्यन्त सोने वाले (उच्छोलणा पहोयस्स) शरीर की विभूषा के लिए हाथ पैर आदि धोने वाले (तारिसगस्स समणस्स) साधु को (सुगइ) सुगति मिलना (दुल्लहा) दुर्लभ है ।

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खतिसजमरयस्स ।
परीसहे जिणतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स ॥२७॥

अन्वयार्थ.— (तवोगुणपहाणस्स) तपरूपी गुणो से प्रधान (उज्जुमइ) सरल बुद्धि वाले (खतिसजमरयस्स) क्षमा और सयम में रत (परीसहे) परिषहों को (जिणतस्स) जीतने वाले (तारिसगस्स) साधु को (सुगई) सुगति-मोक्ष मिलना (सुलहा) सुलभ है ॥२७॥

भावार्थः— तप संयम में अनुरक्त सरल प्रकृति वाले तथा बाईस परिषहो को समभाव पूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है ।

पच्छावि ते पयाया, खिप्प गच्छंति अमरभवणाइ ।
जेसिं पिओ तवो सजमो अ खतो अ बभचेर च ॥२८॥

अन्वयार्थः – (जसिं) जिनको (तवो) तप (अ) और (संजमो) सयम (अ) तथा (खती) क्षमा (च) और (बभ-चेरं) ब्रह्मचर्य (पिओ) प्रिय है, ऐसे साधक यदि (पच्छावि) अपनी पिछली अवस्था मे भी वृद्धावस्था में भी (पयाया) चढने

परिणामों से संयम स्वीकार करते हैं तो (ते) वे (खिप्प) शीघ्र (अमरभवणाइ) स्वर्ग अथवा मोक्ष को (गच्छति) प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥

भावार्थः— पूर्ण वैराग्य के साथ थोडे समय तक पालन किया हुआ भी संयम सुगति देने वाला होता है ।

इच्चेय छज्जीवणिय, सम्मद्दिट्ठी सया जए ।
दुल्लह लहित्तु सामण्ण, कम्मुणा न विराहिज्जासि ॥२६॥
त्तिवेमि ।

अन्वयार्थः— (सया) सदा (जए) यतना पूर्वक प्रवृत्ति करने वाला (समद्दिट्ठी) सम्यग् दृष्टि (दुल्लह) दुर्लभ (सामण्ण) साधुपने को (लहित्तु) प्राप्त करके (इच्चेय) पूर्वोक्त स्वरूप वाले (छज्जीवणियं) छ जीव निकाय की (कम्मुणा) मन वचन काया से (न विराहिज्जासि) विराधना न करे ॥२६॥ (त्तिवेमि) श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही कहा हूं ।

'पिण्डैषणा' नामक पांचवें अध्ययन का पहला उद्देशा

इस अध्ययन मे मुनि के लिए भिक्षा की विधि बतलाई जाती है :—

संपत्ते भिक्खकालम्मि, असंभंतो अमुच्छिओ ।
इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए ॥१॥

अन्वयार्थ:— (भिक्खकालम्मि) भिक्षा-गोचरी का समय (संपत्ते) होने पर साधु (असंभंतो) चित्त की व्याकुलता एवं उद्वेग रहित होकर (अमुच्छिओ) आहारादि में मूर्च्छित न होता हुआ (इमेण) इस आगे बताई जाने वाली (कमजोगेण) विधि से (भत्तपाणं) आहार पानी (गवेसए) गवेषणा करे ॥१॥

भावार्थ:— जिस गांव मे जो समय गोचरी का हो, उसी समय मुनि चंचलता और गृद्धिभाव रहित होकर भिक्षा के लिए जावे ।

से गामे वा नगरे वा, गोयरग्गगओ मुणी ।
चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥२॥

अन्वयार्थ:— (गामे) गांव में (वा) अथवा (नगरे) नगर मे (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (से) वह (मुणी) मुनि (अणुव्विग्गो) उद्वेग रहित (वा) और (अव्वक्खित्तेण) शांत (चेयसा) चित्त से (मंदं) ईर्यासमिति पूर्वक मन्द गति से (चरे) चले ॥२॥

पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जंतो वीय हरियाइ, पाणे य दगमट्टिय ॥३॥

अन्वयार्थः— (पुरओ) सामने (जुगमायाए) धूसर-चार हाथ प्रमाण (महिं) पृथ्वी को (पेहमाणो) देखता हुआ मुनि (वीय हरियाइ) बीज और हरी वनस्पति (पाणे) वेइन्द्रियादिक प्राणी (य) और (दगमट्टिय) सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टी को (वज्जंतो) वर्जता हुआ बचाता हुआ (चरे) चले ॥३॥

ओवायं विसमं खाणुं, विज्जलं परिवज्जए ।
सकमेण न गच्छिज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥४॥

अन्वयार्थः— (परक्कमे) यदि दूसरा अच्छा मार्ग (विज्जमाणे) हो तो-साधु (ओवायं) जिस मार्ग मे गिर पड़ने की शंका हो (विसम) जो मार्ग खड्डे आदि के कारण विकट हो (खाणुं) जो मार्ग काटे हुए धान्य के डंठलो से युक्त हो और (विज्जल) जो मार्ग कीचड युक्त हो-ऐसे मार्ग को (परिवज्जए) छोड़ देवे तथा-(सकमेण) कीचड आदि के कारण उल्लघने के लिए जिस मार्ग मे ईंट, काठ आदि रखे हुए हो, ऐसे मार्ग से भी मुनि (न) नही (गच्छि-ज्जा) जावे ॥४॥

पवडते व से तत्थ, पक्खलते व संजए ।
हिंसेज्ज पाणभूयाइ, तसे अदुव थावरे ॥५॥

अन्वयार्थः— उपरोक्त मार्ग में जाने में हानि बतलाते हैं (से) उस मार्ग से जाते हुए (सजए) साधु का (व) यदि (तत्थ) वहां (पक्खलते) पैर फिसल जाय (व) अथवा

(पवडते) खड्डे आदि में गिर जाय तो (तसे) त्रस द्वीन्द्रियादिक (अदुव) अथवा (थावरे) स्थावर-एकेन्द्रियादिक (पाणभूयाइ) प्राणी भूतों की (हिंसेज्जा) हिंसा होती है ॥५॥

भावार्थः—साधु उपरोक्त विषम मार्ग से गमन न करे क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से आत्मविराधना और संयम-विराधना होने की संभावना रहती है।

तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजए सुसमाहिए ।
सइ अण्णेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ।६।

अन्वयार्थः— (तम्हा) इसलिए (सुसमाहिए) सुसमाधिवंत (संजए) साधु (सइ अण्णेण मग्गेण) यदि कोई दूसरा अच्छा मार्ग हो तो (तेण) उस विषम मार्ग से (न) नहीं (गच्छिज्जा) जावे। यदि कदाचित् दूसरा अच्छा मार्ग न हो तो उसी मार्ग से मुनि (जयमेव यतना पूर्वक (परक्कमे) गमन करे ॥६॥

इंगाल छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं ।
ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं न इक्कमे ॥७॥

अन्वयार्थः— (संजओ) साधु (ससरक्खेहि) सचित्त रज से भरे हुए (पाएहिं) पैरों से (तं) उस (इंगाल) कोयलों के ढेर को तथा (छारियंरासिं) राख के ढेर को (तुसरासिं) तुषो-भूसे के ढेर को (च) और (गोमयं) गोबर के ढेर को (न इक्कमे) न उल्लंघे ।७॥

न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडतिए ।
महावाए व वायंते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥८॥

अन्वयार्थः— (वासे वासंते) वर्षा बरसती हो (वा)

अथवा (महियाए) धूअर-कुहरा (पडतिए) गिरता हो (व) अथवा (महावाए वायते) महावायु-आंधी चलती हो (वा) अथवा (तिरिच्छसंपाइमेसु) पतगिया आदि अनेक प्रकार के जीव इधर-उधर उड रहे हों तो ऐसे समय मे साधु (न चरेज्ज) गोचरी के लिये बाहर न जावे ॥८॥

न चरेज्ज वेस सामते, वंभचेर वसाणुए ।
वभयारिस्स दतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥९॥

अन्वयार्थः— (वंभचेरवसाणुए) ब्रह्मचर्य की रक्षा चाहने वाले साधु को (वेससामते) वेश्या के मोहल्ले मे (न चरेज्ज) गोचरी न जाना चाहिए क्योकि (तत्थ) वहा गोचरी जाने से (दतस्स) इन्द्रियो को दमन करने वाले (बंभयारिस्स) ब्रह्मचारी साधु का (विसुत्तिया) चित्त चचल (हुज्जा-होज्जा) हो सकता है ॥९॥

अणायणे चरतस्स, ससग्गीए अभिक्खण ।
हुज्ज वयाणं पीला, सामण्णम्मि य ससओ ॥१०॥

अन्वयार्थः— (अणायणे-अणाययणे) वेश्याओ के मोहल्ले में अथवा इसी प्रकार के दूसरे अयोग्य स्थानों में (चरतस्स) गोचरी आदि के लिए जाने वाले साधु के (अभिक्खणं) वार-वार (ससग्गीए) ससर्ग होने के कारण (वयाण) महाव्रतो को (पीला) पीडा (हुज्ज) होती है अर्थात् महाव्रत दूपित होने की आशका रहती है (च) और इतना ही नही किन्तु साधु को (सामण्णम्मि) साधुपने मे भी (ससओ) सन्देह हो जाता है-अथवा दूसरे लोगो को उस साधु के चारित्र में सन्देह हो जाता है ॥१०॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढणं ।
वज्जए वेससामंत, मुणी एगंतमस्सिए ॥११॥

अन्वयार्थः—(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) दुर्गति को बढाने वाले (एयं) इन उपरोक्त (दोस) दोषों को (वियाणित्ता) जानकर (एगंतमस्सिए) एकांत मोक्ष का अभिलाषी (मुणी) मुनि (वेस सामंत) वेश्याओं के मोहल्ले और इसी प्रकार के अयोग्य स्थानो को (वज्जए) छोड दे अर्थात् वहाँ न जावे ॥११॥

भावार्थः— ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे उपरोक्त स्थानो मे जाना साधु को मना किया है क्योकि ऐसे स्थानों मे जाने से साधु का मन चचल हो सकता है, जिससे उसका मन शुभ कार्यों में न लगकर आर्त्त रौद्रध्यान करने लगता है । इसलिए साधु ऐसे ससर्ग को ही टाल दे ।

साणं सूइअं गाविं दित्तं गोणं हयं गयं ।
संडिम्भं कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए ॥१२॥

अन्वयार्थ— मार्ग की यतना विशेष रूप से बतलाई जाती है (साण) जहा काटने वाला कुत्ता हो (सूइअं) नव-प्रसूता-थोडे काल की व्याई हुई (गाविं) गाय हो (दित्त) मदोन्मत्त (गोण) गोधा-बैल हो (हयं) मदोन्मत्त घोडा हो (गयं) मदोन्मत्त हाथी हो और (संडिम्भ-संडिब्भ) जहा बच्चे खेल रहे हो तथा (कलह) जहा परस्पर गाली गलोज हो रहा हो अथवा (जुद्ध) शस्त्र आदि से युद्ध हो रहा हो ऐसे स्थानो को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्जे-अर्थात् ऐसे स्थानो मे न जावे ॥१२॥

अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले ।
इन्दियाइ जहाभाग, दमइत्ता मुणी चरे ॥१३॥

अन्वयार्थः— मार्ग मे किस प्रकार चलना चाहिए, इस विषय मे कहते है कि (मुणी) गोचरो के लिए घूमता हुआ साधु (अणुन्नए) द्रव्य से बहुत ऊपर की तरफ न देखता हुआ तथा भाव से जात्यादि के अभिमान से रहित (नावणए) द्रव्य से शरीर को बहुत न झुकाकर तथा भाव से दीनता रहित (अप्पहिट्ठे) हर्षित न होता हुआ (अणाउले) तथा व्याकुलता रहित (इदियाइ) इन्द्रियो का (जहाभाग) यथाक्रम से (दमइत्ता) दमन करता हुआ (चरे) चले ॥१३॥

दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।
हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुल उच्चावयं सया ॥१४॥

अन्वयार्थः— (गोयरे) गोचरी के लिए साधु (दवदवस्स) अति शीघ्रता से दड़वड-दडवड दौड़ता हुआ (न) न (गच्छेज्जा) जावे (य) और (हसतो) हसता हुआ तथा (भासमाणो) बोलता हुआ भी (नाभिगच्छेज्जा) न जावे किन्तु (सया) हमेशा (उच्चावयं) ऊच-नीच (कुल) कुल मे ईर्यासमिति पूर्वक गोचरी जावे ॥१४॥

आलोअ थिग्गल दार, सधि दगभवणाणि य ।
चरतो न विणिज्झाए, सकट्ठाणं विवज्जए ॥१५॥

अन्वयार्थः— (चरतो) भिक्षा के लिए फिरता हुआ साधु (आलोअ) जालो झरोखे को (थिग्गल) दीवाल के छेद को (दार) द्वार को (सधि) भीत की साध को अथवा चोरो द्वारा किये हुए भीत के छेद को (य) और (दगभव-

णाणि) पलेण्डा आदि के स्थान को (न विणिज्झाए) टक-टकी लगाकर न देखे क्योंकि ये सब (सकट्ठाण) शंका के स्थान हैं। इसलिए इन्हे (विवज्जए) विशेष रूप से त्याग दे ॥१५॥

भावार्थः— ऐसे शका स्थानो को देखने से गृहस्थ को साधु के प्रति चोर-लम्पट आदि का सन्देह हो सकता है।

रण्णो गिहवईण च, रहस्सारक्खियाण य।
सकिलेसकर ठाण, दूरओ परिवज्जए।१६॥

अन्वयार्थ :— साधु (रण्णो) राजा के (गिहवईणं) गृहपतियो के-सेठो के (य) और (आरक्खियाण) नगर की रक्षा करने वाले कोटवाल आदि के (रहस्स) गुप्त बात-चीत करने के स्थानो को (दूरओ) दूर ही से (परिवज्जए) त्याग देवे अर्थात् ऐसे स्थानो मे न जावे, क्योकि ऐसे (ठाण) स्थान (सकिलेसकर) सयम मे असमाधि उत्पन्न करने वाले है।१६॥

भावार्थ :— राजा आदि के गुप्त बातचीत करने के स्थान की तरफ देखने से उनको साधु के प्रति क्रोध तथा अश्रद्धा आदि अनेक दोष उत्पन्न होने की सभावना रहती है।

पडिकुट्ठ कुल न पविसे, मामग परिवज्जए।
अचियत्त कुल न पविसे, चियत्त पविसे कुल ॥१७॥

अन्वयार्थः— साधु (पडिकुट्ठं) शास्त्र निषिद्ध (कुल) कुल में (न पविसे) गोचरी के लिए न जावे तथा (मामगं) जिस घर का स्वामी यह कह दे कि मेरे घर मत आओ ऐसे घर मे साधु (परिवज्जए) न जावे तथा (अचियत्तं)

प्रतीति रहित (कुलं) कुल मे (न पविसे) न जावे किन्तु (चियत्त) प्रतीति वाले (कुल) कुल मे (पविसे) जावे।१७।

साणी पावार पिहिय, अप्पणा नावपगुरे।
कवाड नो पणुल्लिज्जा, उग्गहसि अजाइआ ॥१८॥

अन्वयार्थः— (सि-से) घर के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) मागे बिना (साणीपावार पिहिय) सन आदि के बने हुए परदे आदि से ढके हुए घर को (अप्पणा) साधु स्वय (नावपगुरे) न खोले अर्थात् परदे को न हटावे तथा (कवाड) किवाड को भी (नो) न (पणुल्लिज्जा) खोले ॥१८॥

गोयरग्ग-पविट्ठो य, वच्चमुत्त न धारए।
ओगास फासुअ नच्चा, अणुन्नविअ वोसिरे ॥१९॥

अन्वयार्थः— (गोयरग्गपविट्ठो) गोचरी के लिए गया हुआ साधु (वच्च) मल (य) और (मुत्त) मूत्र को (न धारए) न रोके अर्थात् मलमूत्र की वाधा उपस्थित होने पर उनके वेग को न रोके किन्तु (फासुअ) प्रासुक जीव रहित (ओगास) जगह को (नच्चा) देखकर (अणुन्नविअ) गृहस्थ की आज्ञा लेकर (वोसिरे) मलमूत्र का त्याग करे ॥१९॥

भावार्थ — मलमूत्र की शका से निवृत्त होकर ही साधु को गोचरी के लिए जाना चाहिए किन्तु यदि कदाचित् रास्ते में आकस्मिक शका हो जाय तो निरवद्य स्थान देखकर एव उस स्थान के मालिक की आज्ञा लेकर वहाँ शका का निवारण करे।

णीयदुवार तमस, कुट्ठग परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥२०॥

अन्वयार्थः — (णीयदुवार णीय दुवार) जिस मकान का द्वार बहुत नीचा हो ऐसे मकान को (तमस) प्रकाश रहित (कुट्ठग) कोठे का साधु (परिवज्जए) छोड़ दे—अर्थात् ऐसे मकान में आहार पानी के लिए न जावे। (जत्थ) जहाँ (अचक्खुविसओ) आखो से भली प्रकार दिखाई न देने के कारण (पाणा) द्वीन्द्रियादिक प्राणियो की (दुप्प-डिलेहगा) प्रतिलेखना नही हो सकती। अतएव उनकी विराधना होने की सभावना रहती है ॥२०॥

जत्थ पुप्फाइ बीयाइ, विप्पइन्नाइ कोट्ठए।
अहुणोवलित्तं उल्ल, दट्ठूण परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ :— (जत्थ) जिस (कोट्ठए कुट्ठए) कोठे में (पुप्फाइ) फूल और (बीयाइ) बीज (विप्पइन्नाइ) बिखरे हुए हों उस मकान को तथा (अहुणोवलित्त) तत्काल के लीपे हुए (उल्ल) गीले मकान को (दट्ठूण) देखकर (परि-वज्जए) छोड़ दे अर्थात् ऐसे स्थान मे साधु गोचरी न जावे ॥२१॥

एलगं दारगं साण, वच्छगं वावि कोट्ठए।
उल्लघिया न पविसे, विउहित्ताण व सजए ॥२२॥

अन्वयार्थ — (कोट्ठए-कुट्ठए) जिस कोठे के दरवाजे पर (एलगं) भेड हो (दारग) बालक हो (साणं) कुत्ता हो (वच्छगं) बछडा हो (वावि) अथवा इस प्रकार के दूसरे अर्थात् बकरा, बकरी, पाडा, पाडी आदि हों तो उन्हें (उल्लघिया) उल्लघन करके अथवा (विउहित्ताण) हटाकर (सजए) साधु (न पविसे) प्रवेश न करे ॥२२॥

असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं न विनिज्झाए निअट्टिज्ज अयंपिरो ॥२३॥

अन्वयार्थः— गोचरी के लिए गया हुआ साधु (असंसत्तं पलोइज्जा) किसी की तरफ आसक्ति पूर्वक न देखे (नाइदूरावलोयए) घर के अन्दर दूर तक लम्बी दृष्टि डालकर भी न देखे तथा (उप्फुल्लं) आंखें फाड़-फाड़कर टकटकी लगाकर (न) (विनिज्झाए) देखे । यदि वहाँ भिक्षा न मिले तो (अयंपिरो) कुछ भी न बोलता हुआ अर्थात् दीन वचन न बोलता हुआ तथा क्रोध से बड़बड़ाहट नहीं करता हुआ (निअट्टिज्ज) वहाँ से वापिस लौट आवे ॥२३।

अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ।२४॥

अन्वयार्थ :— (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मुणी) साधु (अइभूमिं) अति भूमि मे अर्थात् गृहस्थ की मर्यादित भूमि से आगे उसकी आज्ञा के बिना (न गच्छेज्जा) न जावे किन्तु (कुलस्स) कुल की (भूमिं) भूमि को (जाणित्ता) जानकर (मियं भूमिं) जिस कुल का जैसा आचार हो वहाँ तक की परिमित भूमि में ही (परक्कमे) जावे, क्योंकि परिमित मर्यादा से आगे जाने पर दाता क्रोधित हो सकता है ॥२४॥

तत्थेव पडिलेहिज्जा, भूमिं भागं वियक्खणो ।
सिणाणस्स य वच्चस्स, सलोगं परिवज्जए ॥२५॥

अन्वयार्थः— (वियक्खणो) भिक्षा के लिए गया हुआ विचक्षण साधु (तत्थेव) उस (भूमिभागं) मर्यादित भूमि की

(पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे अर्थात् उस भूमि को पूज-कर खड़ा रहे। वहाँ खडा हुआ साधु (सिणाणस्स) स्नान-घर की तरफ (य) और (वच्चस्स) पाखाने की तरफ (सलोग) दृष्टि (परिवज्जए) न डाले ॥२५॥

भावार्थ —: जहा खडे रहने से स्नानघर और पाखाना आदि दिखाई देते हो तो विचक्षण साधु ऐसे स्थान को छोड़कर दूसरी जगह खडा हो जाय।

दगमट्टिय आयाणे, बीयाणि हरियाणि य।
परिवज्जतो चिट्ठिज्जा, सव्विदियसमाहिए ॥२६॥

अन्वयार्थः (सव्विदियसमाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखता हुआ समाधिवत मुनि (दगमट्टिय आयाणे) सचित्त जल और सचित्त मिट्टी युक्त जगह को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरित काय को (परि-वज्जतो) वर्ज कर (चिट्ठिज्जा) यतना पूर्वक खडा रहे ॥२६।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयण।
अकप्पिय न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्जा कप्पियं ॥२७॥

अन्वयार्थ. – (तत्थ) वहाँ मर्यादित भूमि में (चिट्ठ-माणस्स) खडे हुए (से) साधु को दाता (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे-वहरावे और यदि आहारादि (कप्पिय) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे किन्तु (अकप्पिय) अकल्पनीय आहारादि (न गिण्हिज्जा—न इच्छि-ज्जा) ग्रहण न करे ॥२७।

आहरती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं।
दितिय पडियाइक्खे. न मे कप्पइ तारिस ॥२८॥

अन्वयार्थः— (आहरती) आहार पानी देती हुई बाई (सिया) यदि कदाचित् (तत्थ) वहाँ (भोयण) आहार पानी को (परिसाडिज्ज) गिराती हुई लावे तो (दितिय) देती उस बाई को साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नही कल्पता है ॥२८॥

समद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असजमकरिं नच्चा, तारिस परिवज्जए ॥२९॥

अन्वयार्थ— यदि (पाणाणि) प्राणियो को (बीयाणि) बीजो को (य) और (हरियाणि) हरी वनस्पति को (समद्दमाणी) पैरों आदि से कुचलती हुई बाई आहार पानी देवे तो (तारिस) इस प्रकार (असजमकरिं) साधु के लिए अयतना करने वाली (नच्चा) जानकर साधु उसे (परिवज्जए) वर्ज दे अर्थात् न ले ।

साहट्टु निक्खिवित्ताण, सचित्त घट्टियाणि य ।
तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥३०॥

ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाणभोयण ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥३१॥

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (समणट्ठाए) साधु के लिए (सचित्त) सचित्त वस्तु को (साहट्टु) अचित्त वस्तु के साथ मिलाकर (निक्खिवित्ताण) सचित्त वस्तु पर आहारादि को रखकर (य) और (सघट्टियाणि) सघट्टा करके तथा (उदग) सचित्त पानी को (संपणुल्लिया) हिलाकर (ओगाहइत्ता) पानी में चल करके (चलइत्ता) रुके हुए

पानी को नाली आदि से निकाल करके (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे तो (दितिय) देती हुई उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नही कल्पता है ॥३०-३१ ॥

पुरेकम्मेण हत्थेण दव्वीए भायणेण वा ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥३२॥

अन्वयार्थः— (हत्थेण) ऐसा हाथ (दव्वीए) कुड़छी-चमचा (वा) अथवा (भायणेण) बरतन आदि जिनको (पुरेकम्मेण) साधु को आहारादि देने के लिए पहले धोये हो, उनसे (दितिय) आहारादि देती हुई बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥३२॥

एव उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया उसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अजणे लोणे ॥३३॥

गेरुय वन्निय सेढिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस कए य ।
उक्किट्ठमससट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥३४॥

अन्वयार्थ :— (एव) इसी प्रकार (उदउल्ले) सचित्त जल से गीले हाथों से (ससिणिद्धे) गीली रेखाओ सहित हाथो से (ससरक्खे) सचित्त रज से भरे हुए (मट्टिया) सचित्त मिट्टी (उसे-ऊसे-ओसे) खार (हरियाले) हरताल (हिंगुलए) हिंगुलू (मणोसिला) मैनसिल (अंजणे) अजन (लोणे) सचित्त नमक (गेरुय) गेरु (वन्निय) पीली मिट्टी (सेढिय-सेडिय) सफेद खडिया मिट्टी (सोरट्ठिय) फिटकड़ी

(पिट्ठ) तत्काल पीसा हुआ आटा (कुक्कुस कए) तत्काल कूटे हुए धान के तुष (य) और (उक्किट्ठ) बडे फल अर्थात् कोहले तरबूज आदि के टुकड़े (वेव) इन उपरोक्त पदार्थों मे से किसी भी पदार्थ से (ससट्ठे) हाथ भरे हुए हो अथवा (असट्ठे) उपरोक्त पदार्थों से भरे हुए हाथ आदि को सचित्त पानी से धोकर साधु को आहार पानी दे तो साधु न ले। (बोद्धव्वे) इस प्रकार की सारी बातें साधु को जान लेनी चाहिए ॥३३-३४॥

असंसट्ठेण हत्थेण दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाण न इच्छिज्जा, पच्छाकम्म जहिं भवे ॥३५॥

अन्वयार्थ—(असंसट्ठेण) शाक आदि से अलिप्त विना भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (दव्वीए) कुडछी-चमचा से (वा) अथवा (भायणेण) वरतन से (दिज्जमाण) दिये जाने वाले आहारादि की मुनि (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् उस आहार को साधु न लेवे क्योंकि (जहिं) जहाँ (पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म-साधु को आहारादि देने के वाद सचित्त जल से हाथ आदि को धोने की क्रिया (भवे) लगने की सम्भावना हो ॥३५॥

संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, ज तत्थेसणिय भवे ॥३६॥

अन्वयार्थः—(ससट्ठेण) शाक आदि पदार्थों से भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (य) या (दव्वीए) कुड़छी से (वा) अथवा (भायणेण) वरतन से (दिज्जमाण) आहारादि देवे (जं) और वह आहारादि (एसणिय) एषणीय-निर्दोष (भवे)

हो तो (तत्थ) उस आहार को मुनि (पडिच्छिज्जा) ग्रहण करे ॥३६।

भावार्थ— मुनि को जो वस्तु दी जा रही हो, उसी से यदि हाथ, कुड़छी आदि भरे हुए हो तो मुनि उस आहारादि को ग्रहण कर सकता है ।

दुण्ह तु भुजमाणाण, एगो तत्थ निमतए ।
दिज्जमाण न इच्छिज्जा, छद से पडिलेहए ॥३७॥

अन्वयार्थ.- (तत्थ) गृहस्थ के घर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हों. उनमे से यदि (एगो) एक व्यक्ति (निमतए) निमत्रण करे अर्थात् आहारादि घामे (तु) तो (दिज्जमाण) दिये जाने वाले उस आहार की साधु (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (से) उस निमत्रण न करने वाले व्यक्ति के (छंद) अभिप्राय को (पडिलेहए) देखे ॥ ७॥

दुण्ह तु भुजमाणाण, दो वि तत्थ निमतए।
दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, ज तत्थेसणिय भवे ॥३८॥

अन्वयार्थः— (तु) यदि (तत्थ) गृहस्थ के घर पर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो और (दो वि) वे दोनो (निमंतए) निमत्रण करे और (ज) यदि (दिज्जमाण) दिया जाने वाला (तत्थ) वह आहार (एसणिय) एषणीय-निर्दोष (भवे) हो तो साधु (पडिच्छिज्जा) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३८।

गुव्विणीय उवण्णत्थं, विविह पाणभोयण ।
भुजमाण विवज्जिज्जा, भुत्तसेस पडिच्छए ॥३९॥

अन्वयार्थः— (गुव्विणीए) गर्भवती स्त्री के लिए (उवगणंत्थ) बना कर रखे हुए (विविहं) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार पानी को यदि वह (भु जमाण) खा रही हो, तो साधु (विवज्जिज्जा) उस आहारादि को वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (भुत्तसेस) उस गर्भवती के भोजन कर लेने के बाद जो बचा हुआ हो तो (पडिच्छए) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३६॥

सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।
उट्ठिआ वा निसीइज्जा, निमन्ना वा पुणुट्ठए ।४०॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४१॥

अन्वयार्थः— (सिया) यदि कदाचित् (कालमासिणी) नजदीक प्रसव वाली (गुव्विणी) गर्भवती स्त्री (उट्ठिआ वा) जो पहले से खडी हो किन्तु (समणट्ठाए) साधु को आहारादि देने के लिए (निसीइज्जा) वैठे (वा) अथवा (निसन्ना) पहले से वैठी हुई वह साधु के लिए (पुण) फिर (उट्ठए) खडी हो (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय। अकल्पनीय (भवे) होता है । इसलिए (दितिय। देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४०-४१॥

थणग पिज्जमाणी दारग वा कुमारिय ।
त निक्खिवित्तु रोयत, आहारे पाणभोयण ॥४२॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४३॥

अन्वयार्थः— (दारगं) बालक को (वा) अथवा (कुमारिय) बालिका को (थणग पिज्जमाणी-पिज्जमाणी य) स्तन पान कराती हुई चुघाती हुई बाई (त) बच्चे को (निक्खिवित्तु) नीचे रक्खे और बच्चा (रोयते) रोने लगे उस समय (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४२-४३॥

ज भवे भत्तपाणं तु, कप्पाकप्पम्मि सकिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४४॥

अन्वयार्थः— (ज) जो (भत्तपाण) आहार पानी (कप्पाकप्पम्मि) कल्पनीय और अकल्पनीय की (सकीय) शका से युक्त हो (तु) तो साधु (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४४॥

दगवारेण पिहियं, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥

त च उब्भिदिआ दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४६॥

अन्वयार्थः— (दगवारेण) सचित्त जल के घड़े से (नीसाए) चक्की से (वा) अथवा (पीढएण) चौकी या बाजोट से (वा) अथवा (लोढेण) पत्थर से (वि) अथवा

इसी तरह के (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार पानी का बरतन (पिहिय) ढका हुआ हो (वि) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छांनण लगी हुई हो (तच) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिदिआ-उब्भिदिउ) खोलकर (दिज्जा) आप स्वय देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे तो (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४५-४६॥

असणं पाणग वावि, खाइमं साइम तहा ।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पगड इम ॥४७॥

तं भवे भत्तपाणं तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा ।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगड इम ॥४९॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥

असण पाणगं वावि, खाइमं साइम तहा ।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगड इम ॥५१॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५२॥

असण पाणग वावि, खाइमं साइम तहा ।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, समणट्ठा पगड इम ॥५३॥

तं भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५४॥

अन्वयार्थः— (ज) जिस (असणं) आहार (पाणगं) पानी (वावि) अथवा (खाइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय में साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा। अथवा। (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुणट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओं के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाणं) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥ ४७-५४ ॥

उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहडं।
अज्झोयर पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

अन्वयार्थः— जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार मे आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए बनाये जाने वाले आहार मे साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणों से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड दे अर्थात् ग्रहण न करे। ५५॥

उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं ।
सुच्चा निस्संकिय सुद्धं, पडिगाहिज्ज सजए ॥५६॥

अन्वयार्थः— सन्देह हो जाने पर (सजए) साधु दाता से (से) उस आहारादि की (उग्गम) उत्पत्ति के विषय मे (पुच्छिज्जा) पूछे कि यह आहार (कस्सट्ठा) किसके लिए (वा) और (केण) किसने (कड) तैयार किया है ? फिर (सुच्चा) गृहस्थ के मुख से उसकी उत्पत्ति को सुनकर यदि वह (निस्सकिय) शका रहित औद्देशिक आदि दोपो से रहित हो (अ) और (सुद्ध) निर्दोष हो तो साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे, अन्यथा नही ॥५६॥

असण पाणगं वावि, खाइम साइम तहा ।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीस, वीएसु हरिएसु वा ॥५७॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पि ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५८॥

अन्वयार्थः—(असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशन पान खादिम स्वादिम चारो प्रकार का आहार (पुप्फेसु) फूलों से (वीएसु) वीजो से (वा) अथवा (हरिएसु) हरी लीलोती से (उम्मीस) मिश्रित (होज्ज) हो जाय तो अर्थात् परस्पर मिल जाय, ऐसा आहार पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'तं भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ ५७-५८ ॥

असण पाणग वावि, खाइमं साइमं तहा ।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्त, उर्तिग पणगेसु वा ॥५९।

तं भवे भत्तपाणं तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥६०॥

अन्वयार्थः – (असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (उदगम्मि) सचित्त जल के ऊपर (वा) अथवा (उत्तिंग पणगेसु) चीटियों के विल पर या लीलन फूलन पर (निक्खित्ता) रखा हुआ हो तो ऐसा आहार पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥५९-६०॥

> असण पाणग वावि, खाइम साइमं तहा ।
> तेउम्मि ज्ज निक्खित्ता, तं च सघट्टिया दए ॥६१॥
> तं भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पियं ।
> दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥६२॥

अन्वयार्थ - (असणं पाणग वावि खाइमं तहा साइमं) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (तेउम्मि-अगणिम्मि) अग्नि के ऊपर (निक्खित्ता) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) अथवा (त) अग्नि के साथ (सघट्टिया) सघट्टा हो रहा हो ऐसा अकल्पनीय आहारादि (दए) दे तो साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥६१-६२॥

एव उस्सक्किया ओसक्किया उज्जालिया पज्जालिया निव्वाविया, उस्सिचिया निस्सिचिया ओवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥

> तं भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
> दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६४॥

अन्वयार्थ — (एवं) जिस प्रकार अग्नि से सघट्टा हो रहा है ऐसे आहारादि को मुनि नही लेते उसी प्रकार (उस्सक्किया-उस्सिक्किया) अग्नि मे इन्धन आगे सरका कर (ओसक्किया) अधिक इन्धन को अग्नि से बाहर निकाल

कर (उज्जालिया) बुझी हुई अग्नि को फूक आदि से सिलगा कर (पज्जालिया) अग्नि को अधिक प्रज्वलित करके (निव्वाविया) अग्नि को बुझाकर (उस्सिचिया) अग्नि पर पकते हुए आहार मे से कुछ बाहर निकाल कर (निस्सि-चिया) उफनते हुए दूध आदि मे पानी का छिडका देकर (ओवत्तिया-उव्वत्तिया-उवत्तिया) अग्नि पर रहे हुए आहा-रादि को दूसरे बरतन मे निकालकर (ओयारिया) अग्नि पर रहे हुए बरतन को नीचे उतारकर (दए) फिर आहार पानी दे तो ऐसे अकल्पनीय आहार पानी को साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ।६३-६४।

भावार्थ :— 'साधु को आहारादि देने में समय लगेगा' इतनी देर मे अग्नि ठडी न पड जाय अथवा अग्नि पर रहा हुआ आहारादि जल न जाय, ऐसा विचार कर यदि दाता अग्नि की उपरोक्त क्रिया करके आहारादि दे तो साधु उसे ग्रहण न करे।

हुज्ज कट्ठ सिल वावि, इट्टाल वावि एगया ।
ठविय सकमट्ठाए, त च होज्ज चलाचल ॥६५॥

न तेण भिक्खू गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असजमो ।
गभीर झुसिर चेव, सव्विदिय समाहिए ।६६॥

अन्वयार्थः— (एगया) कभी वर्षा आदि के समय (सकमट्ठाए) आने जाने के लिए (कट्ठ) काष्ठ (वावि) अथवा (सिल) शिला (वावि) अथवा (इट्टाल) ईंट का टुकडा (ठविय) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) और (त) यदि वह (चलाचल) अस्थिर-डगमगाता (होज्ज) हो तो (तेण) उस मार्ग से तथा जो मार्ग (गभीर) गहरा उडा होने से प्रकाश रहित हो और (झुसिर) जो मार्ग पोला हो

उस मार्ग से (सव्विदिय समाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (भिक्खू) साधु (न) नही (गच्छेज्जा) जावे क्योकि (तत्थ) वहाँ पर गमन करने से सर्वज्ञ प्रभु ने (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है ॥६५-६६॥

निस्सेणि फलग पीढ, उस्सवित्ताणमारुहे ।
मच कील च पासाय समणट्ठाए व दावए ॥६७॥

दुरूहमाणी पवडिज्जा, हत्थ पाय व लूसए ।
पुढवि जीवे वि हिंसिज्जा, जे य तन्निस्सिया जगे ॥६८॥

एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
तम्हा मालोहड भिक्ख, न पडिगिण्हति सजया ॥६९॥

अन्वयार्थ — यदि (दावए) दान देने वाली स्त्री (समणट्ठाए) साधु के लिए (निस्सेणि) निःसरणी (फलग) पाटिया (पीढ) चौकी (मचं) खाट (व) और (कील) कीले को (उस्सवित्ताण) ऊचा-खड़ा करके (पासाय) प्रासाद-दूसरी मजिल पर (आरुहे) चढे तो (दुरूहमाणी) इस प्रकार कष्ट से चलती हुई वह (पवडिज्जा-पवडेज्जा-पडिवज्जा) शायद गिर पडे (व) और (हत्थ) उसका हाथ (पाय) पैर आदि (लूसए) टूट जाय तथा (पुढविजीवे) पृथ्वीकाय के जीवों की भी (हिंसिज्जा) हिंसा होगी (य) और (जे) जो (तन्निस्सिया) उस पृथ्वी की नेसराय मे रहे हुए (जगे वि) त्रस जीवो की भी हिंसा होगी । (तम्हा) इसलिए (एयारिसे) ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के (महादोसे) महादोषों को (जाणिऊण) जानकर (सजया) शुद्ध सयम का पालन करने वाले (महेसिणो) महर्षि लोग (मालोहड) ऊपर के

मकान से निसरणी आदि द्वारा उतार कर लाई हुई (भिक्ख) भिक्षा को (न पडिगिण्हति) ग्रहण नही करते ॥६७-६८-६९॥

कदं मूलं पलब वा, आमं छिन्न च सन्निर ।
तुबाग सिंगबेर च, आमगं परिवज्जए ॥७०।

अन्वयार्थः— (आम) कच्चा (कद) जमीकन्द (मूल) मूल-जड़ (पलब) तालफल (वा) अथवा (छिन्न) काटी हुई भी (आमग) सचित्त (सन्निर) बथुए आदि पत्तो की भाजी (तुबागं) घीया (च) और (सिंगबेर) अदरख आदि सब प्रकार की सचित्त वनस्पति जिसे अग्नि आदि का शस्त्र न लगा हो उसे साधु (परिवज्जए) छोड दे ॥७०॥

तहेव सत्तु चुन्नाइ, कोल चुन्नाइं आवणे ।
सक्कुलि फाणिअ पूअं, अन्न वावि तहाविय ॥७१॥

विक्कायमाण पसढ, रएण परिफासिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥७२॥

अन्वयार्थः— (तहेव) जिस प्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य हैं उसी प्रकार (आवणे) बाजार मे दूकान पर (विक्कायमाण) बेचने के लिए (पसढ) खुले रूप से रखे हुए (रएण) सचित्त रज से (परिफासिय) युक्त (सत्तुचुन्नाइ) जो आदि के सत्तू का चूर्ण (कोल चुन्नइ) बोरों का चूर्ण (सक्कुलि) तिल पापडी (फाणिअं) गीला गुड (पूअं) मालपूवा तथा (तहाविह) इसी प्रकार के (अन्न वावि) और भी पदार्थ साधु को देने लगे तो (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (मे) मुझे (तारिस)

इस प्रकार का आहार (न कप्पइ) नही कल्पता है ॥७१-७२॥

> बहु अट्ठिय पुग्गल, अणिमिसं वा बहुकटय ।
> अत्थिय तिदुयं बिल्ल, उच्छुखड व सिबलि ॥७३।
>
> अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झिय धम्मिय ।
> दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥७४॥

अन्वयार्थः — ×(बहुअट्ठिय) बहुत बीजो वाला फल जैसे सीताफल (पुग्गल) पुद्गल वृक्ष का फल (अणिमिस) अनानस का फल (बहुकटय) बहुत कांटों वाला फल—जैसे पनस कटहल आदि । इस तरह व्याख्यान करने से ये चार पद अलग-अलग हैं कही-कही 'बहुअट्ठिय' और 'बहुकंटयं' इन दो पदो को विशेषण रखा है, तब ऐसा अर्थ किया है—(बहुअट्ठिय) बहुत बीजों वाले फल का (पुग्गल) गिर-गुद्दा (वा) और (बहुकंटय) बहुत कांटों वाला (अणिमिस) अनानस का फल । (अत्थियं) अस्थिक-अगत्थिया वृक्ष का फल (तिंदुय) तिन्दरुक-टीबरु वृक्ष का फल (बिल्ल) बेल का फल (उच्छुखण्डं) इक्षुखण्ड गडेरी (व) और (सिंबलिं) सेमल का फल ये उपरोक्त नाम वाले फल (भोयणजाए)

×टिप्पणी—अट्ठिय गुठली (आप्टे कृत संस्कृत इगलिश डिक्सनेरी और जैनागम शब्द सग्रह पृष्ठ ३६। बहुअट्ठिय-बहु बीजकमिति (अवचूरिका जो विक्रम सवत् १६६५ से पहले की बनी हुई है, उसमे बहुअट्ठिय शब्द का अर्थ बहुबीजक' ऐसा लिखा है) । निघण्टु कोष मे बहुबीजक' शब्द सीताफल के लिए आया है यथा सीताफल गण्डमाश्च वैदेहीवल्लभ तथा । कृष्णबीज चाग्रिमाख्यमातृप्य बहुबीजक ॥

जिनमे खाने योग्य अंश (अप्पे) थोड़ा (सिया) हो और (बहु उज्झिय धम्मिय धम्मिए) फेंक देने योग्य अश अधिक हो, ऐसे फल आदि (दिंतिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ।७३-७४।।

तहेवुच्चावय पाण, अदुवा वार धोयण ।
ससेइम-चाउलोदग अहुणाधोय विवज्जए ।।७५।।

अन्वयार्थः— (तहेव) जिस प्रकार आहार के विषय मे बतलाया गया है उसी प्रकार (पाण) पानी के विषय मे आगे बताया जाता है (उच्चावय) उच्च अर्थात् अच्छे वर्णादि से युक्त दाख आदि का धोवन और अवच सुन्दर वर्ण से रहित मेथी, केर आदि का धोवन (अदुवा) अथवा (वार धोयण) गुड़ के घड़े का धोवन (ससेइम) आटे की कठौती का धोवन (चाउलोदग) चावलों का धोवन । ये सब धोवन यदि (अहुणा धोय) तुरन्त के धोये हुए हो तो साधु (विवज्जए) उन्हे छोड देवे अर्थात् ग्रहण न करे ।।७५।।

ज जाणेज्ज चिराधोय, मईए दसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, ज च निस्सकिय भवे ।।७६।।

अन्वयार्थः— (मईए) अपनी बुद्धि से (वा) अथवा (दसणेण) देखने से (पडिपुच्छिऊण) गृहस्थ से पूछकर (वा) अथवा (सुच्चा) सुनकर (ज) जो धोवन (चिराधोय) बहुत काल का धोया हुआ है ऐसा (जाणेज्ज) जाने (च) और (ज) जो (निस्सकिय) शंका रहित (भवे) हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है ।७६।।

अजीव परिणय नच्चा, पडिगाहिज्ज सजए ।
अह सकिय भविज्जा आसाइत्ताण रोयए ।७७।।

अन्वयार्थ.— (अजीव) जल को जीव रहित और (परिणय) शस्त्र परिणत (नच्चा) जानकर (सजए) साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे (अह) यदि वह (सकिय) इससे प्यास बुझेगी या नही इस प्रकार की शंका से युक्त (भविज्जा) हो तो उसे (आसाइत्ताण) चख करके (रोयए) निर्णय करे ।।७७।।

थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे ।
मा मे अच्चंबिल पूय, नाल तिण्ह विणित्तए ।।७८।।

अन्वयार्थ— धोवन आदि को चख कर निर्णय करने के लिए साधु दाता से कहे कि (आसायणट्ठाए) चखने के लिए (थोव) थोडा सा धोवन (मे) मेरे (हत्थगम्मि) हाथ मे (दलाहि) दो ।- क्योकि (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टा (पूय-पूइ) बिगडा हुआ और (तिण्हं) प्यास को (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ धोवन (मे) मेरे लिए (मा) उपयोगी नही होगा ।७८।

त च अच्चबिल पूय नाल तिण्ह विणित्ताए ।
दिन्तिया पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ।।७९।।

अन्वयार्थः— (त) उस (अच्चविल) अत्यन्त खट्टे (पूयं-पूइ) विगडे हुए (च) और (तिण्ह) प्यास (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ ऐसे धोवन को (दितिय) देने वाली वाई से साधु (पडयाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का धोवन (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ।।७९।।

तं च होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छियं ।
तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए ॥८०॥

अन्वयार्थः— यदि कदाचित् (अकामेण-अकामेण) विना इच्छा से (च) अथवा (विमणेण) विना मन से-ध्यान न रहने के कारण (पडिच्छिय होज्ज-होज्जा-हुज्जा) उपरोक्त प्रकार का धोवन ग्रहण कर लिया हो तो साधु (तं) उस धोवन को (न) न तो (अप्पणा) आप स्वयं (पिबे) पिवे और (नो वि) न (अन्नस्स) दूसरो को (दावए) पिलावे ॥८०॥

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८१॥

अन्वयार्थः—(एगंत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जाकर (अचित्त) एकेन्द्रियादि प्राणी रहित स्थान को (पडिलेहिया) पूंजकर उस धोवन को (जयं) यतना से (परिट्ठविज्जा) परठ दे। (परिट्ठप्प) परिठव करके तीन वार वोसिरे-वोसिरे कहे फिर वापिस आकर (पडिक्कमे) इरिया-वहिया का प्रतिक्रमण करे ॥८१॥

सिया य गोयरग्गगओ, इच्छिज्जा परिभोत्तुअं ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं ।८२॥
अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए ॥८३॥

अन्वयार्थः— (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मेहावी) समाचारी का जानकर बुद्धिमान् (संजए) साधु (सिया) यदि कदाचित् ग्लान अवस्था के कारण

अथवा अन्य किसी कारण से (परिभोत्तुअं-परिभुंत्तुअं-परिभुंजिउ) वही पर आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो वहाँ (फासुग्रा) जीव रहित (कुट्ठगं) कोठे आदि को (पडिलेहित्ताण) पडिलेहणा करके (य) और (अणुन्नवित्तु) गृहस्थ की आज्ञा मांगकर (तत्थ) वहां (भित्तिमूल) दीवार की आड़ मे (वा) अथवा (पडिच्छन्नम्मि) ऊपर से छाये हुए स्थान में (हत्थग) पूंजनी से हाथ आदि को (सपमज्जित्ता) पूंजकर (सवुड) उपयोग पूर्वक (भुंजिज्ज) आहार करे ॥८२-८३॥

तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठिय कटओ सिया ।
तणकट्ठसक्कर वावि, अन्न वावि तहाविह ॥८४॥

त उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डुए ।
हत्थेण त गहेऊण, एगंतमवक्कमे ॥८५॥

एगतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया ।
जया परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८६॥

अन्वयार्थः— (तत्थ) वहां कोठे आदि में (भुंजमाणस्स) आहार करते हुए (से) साधु के आहार में (सिया) यदि कदाचित् (अट्ठिया) बीज-गुठली (कटओ) काटा (तण) तिनका (कट्ठ) काठ का टुकडा (वावि) अथवा (सक्कर) छोटा ककर तथा (अन्न वावि) और भी (तहाविह) इसी प्रकार का कोई पदार्थ आ जाय तो (त) उसे (उक्खिवित्तु) निकाल कर (न निक्खिवे) इधर-उधर न फेंके तथा (आसएण) मुख से भी (न छड्डुए) न-फेंके-न थूके किन्तु (हत्थेण) हाथ से (तं) उसे (गहेऊण) ग्रहण करके (एग तं) एकांत

स्थान मे (अवक्कमे) जावे और (एगंत) एकान्त स्थान मे (अवक्कमित्ता) जाकर (अचित्तं) जीव रहित अचित्त स्थान की (पडिलेहिया) पडिलेहणा करके (जया) यतना पूर्वक उसे (परिट्ठविज्जा) परठ दे और (परिठप्प) परिठव करके (पडिक्कमे) वापस लौटकर प्रतिक्रमण करे अर्थात् इरिया-वहिया का ध्यान करे ॥८४-८५-८६॥

सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुअ।
सपिंडपायमागम्म, उडुअ पडिलेहिया ॥८७॥

विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥८८॥

अन्वयार्थः— (सिया) जो (भिक्खू) साधु (सिज्ज) अपने स्थान मे ही (आगम्म) आकर (भुत्तुअ-भोत्तुअ) आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो (सपिंडपाय) वह उस शुद्ध भिक्षा को लेकर (आगम्म) अपने स्थान मे आवे (य) और (विणएण-विणएण) विनयपूर्वक (पविसित्ता) स्थानक मे प्रवेश करके (उडुअ) भोजन करने के स्थान को (पडि-लेहिया) अच्छी तरह देखे (य) और (गुरुणो) गुरु के (सगासे) पास (आगओ) आकर (मुणी) मुनि (इरिया-वहिय) इरियावहिया का पाठ (आयाय) पढकर (पडि-क्कमे) कायोत्सर्ग करे ॥८७ ८८॥

आभोइत्ताण नीसेस, अइयार जहक्कम।
गमणागमणे चेव, भत्तपाणे य संजए ॥८९॥

उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहियं भवे ॥९०॥

अन्वयार्थः— (सजए) कायोत्सर्ग करते समय मुनि (गमणागमणे) जाने आने मे (चेव) और (भत्तपाणे) आहार पानी के ग्रहण करने मे लगे हुए (नीसेस) सब (अइयार) अतिचारो को (य) तथा (ज) जो आहार पानी (जहा) जिस प्रकार से (गहिय) ग्रहण किया (भवे) हो उसे (जहक्कम) यथाक्रम से (आभोइत्ताण-आभोएत्ताण) उपयोग पूर्वक चिन्तवन करके (उज्जुप्पन्नो) सरल बुद्धि वाला (अणुव्विग्गो) उद्वेग रहित वह मुनि (अव्वक्खित्तेण) एकाग्र (चेयसा) चित्त से (गुरुसगासे) गुरु के पास (आलोए) आलोचना करे ॥८९-९०॥

न सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्वि पच्छा व ज कडं ।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चिंतए इम ॥९१॥

अन्वयार्थः (ज) जो अतिचार (पुव्वि) पहले (व) तथा (तच्छा) पीछे (कड) लगा है उसकी (सम्मं) अच्छी तरह से क्रम पूर्वक (आलोइयं) आलोचना (न हुज्जा) न हुई हो तो (तस्स) उस अतिचार की (पुणो) फिर से (पडिक्कमे) आलोचना करे और (वोसट्ठो) कायोत्सर्ग में रहा हुआ साधु (इम) आगे की गाथा मे कहे गये अर्थ का (चिंतए) चिन्तवन करे ॥९१॥

भावार्थः— जो अतिचार पहले लगा हो उसकी पहले आलोचना करनी चाहिए और पीछे लगे हुए अतिचार की पीछे आलोचना करनी चाहिए, किन्तु पहले की पीछे और पीछे की पहले आलोचना न करनी चाहिए ।

अहो जिणेहि असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहण हेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥९२॥

अन्वयार्थः—कायोत्सर्ग मे स्थित मुनि इस प्रकार विचार करे कि (अहो) अहो ! (जणेहिं) जिनेश्वर देवो ने (मोक्ख-मुक्खसाहण हेउस्स) मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत (साहु-देहस्स) साधु के शरीर का (धारणा) निर्वाह करने के लिए (साहूण) साधुओ के लिए कैसी (असावज्जा) निर्दोष (वित्ती) भिक्षावृत्ति (देसिया) बताई है ॥६२॥

णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसथव ।
सज्झाय पट्ठवित्ताण, वीसमेज्ज खण मुणी । ६३॥

अन्वयार्थः—(मुणी) मुनि (णमुक्कारेण) 'णमो अरिहत्ताण' पद का उच्चारण करके (पारित्ता-पारेत्ता) कायोत्सर्ग को पारे तथा (जिणसथव) 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि से तीर्थंकर भगवान् की स्तुति (करित्ता करेत्ता) करके तथा (सज्झाय) कुछ स्वाध्याय (पट्ठवित्ताणं) करके (खणं) कुछ देर के लिए (वीसमेज्ज) विश्राम करे ॥६३॥

वीसमतो इम चिते, हियमट्ठ लाभमट्ठिओ ।
जइ मे अणुग्गह कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥६४॥

अन्वयार्थः— (लाभमट्ठिओ) निर्जरा रूपी लाभ का इच्छुक साधु (वीसमतो) विश्राम करता हुआ (हियमट्ठ) अपने कल्याण के लिए (इम) इस प्रकार (चिते) चिन्तवन करे कि— (जइ) यदि कोई (साहू) साधु (मे) मुझ पर (अणुग्गह) अनुग्रह (कुज्जा) करे अर्थात् मेरे आहार मे से कुछ आहार ग्रहण करे तो (तारिओ) मैं इस ससार समुद्र से पार (हुज्जामि) हो जाऊं ॥६४॥

साहवो तो चिअत्तेण, निमतिज्ज जहक्कम ।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धि तु भुजए ॥६५॥

अन्वयार्थ.— (तो) इस प्रकार विचार कर वह मुनि गुरु आज्ञा मिलने पर (साहवो) सब साधुओ को (चिअ-त्तेण) प्रीति पूर्वक (जहक्कम) यथाक्रम से अर्थात् सब से पहले बड़े साधु को तत्पश्चात् छोटे को इस प्रकार क्रम से (निमतिज्ज) निमत्रण करे। फिर (जइ) यदि (तत्थ) उन में से (केइ) कोई साधु (इच्छिज्जा) आहार लेना चाहे तो उन्हें देकर (तेहि सद्धि तु) उनके साथ (भुजए) आहार करे ॥६५॥

> अह कोइ न इच्छिज्जा, तओ भुजिज्ज एक्कओ।
> आलोए भायणे साहू, जय अप्परिसाडिय ॥६६॥

अन्वयार्थः— (अह) इस प्रकार निमत्रण करने पर भी यदि (कोइ) कोई साधु (न इच्छिज्जा) आहार लेना न चाहे (तओ) तो फिर (साहू) वह साधु (एक्कओ-एगओ) अकेला ही द्रव्य से स्वय, भाव से रागद्वेष रहित (आलोए) चौड़े मुख वाले प्रकाश युक्त (भायणे) पात्र मे (अप्परिसाडिय-अपरिसाडिय) नीचे नही गिराता हुआ (जय) यतना पूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे ॥६६॥

> तित्तगं व कडुअ व कसाय, अविलं व महुर लवण वा।
> एयलद्धमन्नत्थ पउत्त, महुघय व भुजिज्ज सजए ॥६७॥

अन्वयार्थः— (अन्नत्थ पउत्त) गृहस्थ के द्वारा अपने लिये बनाया हुआ (एयलद्ध-एय लद्ध) शास्त्रोक्त विधि से मिला हुआ वह आहार यदि (तित्तग) तीखा (व) अथवा (कडुअ) कड़वा (व) अथवा (कसाय) कसैला (व) अथवा (अविल) खट्टा (वा) अथवा (महुर) मीठा अथवा (लवण)

नमकीन चाहे कैसा भी हो किन्तु (संजए) साधु उस आहार को (महुघय व) घी शक्कर को तरह प्रसन्नता पूर्वक (भुजिज्ज) खावे ॥६७॥

अरस विरस वावि, सूइयं वा असूइय ।
उल्लं वा जइ वा सुक्क, मथु कुम्मास भोयण ॥६८॥

उप्पण्ण नाइ हीलिज्जा, अप्प वा बहु फासुय ।
मुहालद्धं मुहाजीवी, भुजिज्जा दोसविज्जय । ६६ ।

अन्वयार्थ :— (उप्पण्ण) शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ आहार (जइ) चाहे (अरस) रस रहित हो (वावि) अथवा (विरस) विरस पुराने चाँवल एव पुराने घान की बनी हुई रोटी आदि हो (सूइय) बघार छोक दिया हुआ शाक हो (वा) अथवा (असूइय) बघार रहित हो (उल्ल) गीला हो (वा) अथवा (सुक्कं) शुष्क भुने हुए चने आदि हो (वा) अथवा (मंथु) बोर का चून या कुलथी का आहार हो अथवा (कुम्मास भोयण) उड़द के बाकले हो (अप्प) सरस आहार थोड़ा हो (वा) अथवा (वहु) नीरस आहार बहुत हो अर्थात् चाहे कैसा भी आहार हो साधु (नाइ हीलिज्जा) उस आहार की अथवा दाता की अव-हेलना-निन्दा न करे किन्तु (मुहाजीवी) निस्पृहभाव से केवल सयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए भिक्षा लेने वाला मुनि (मुहालद्धं) दाता द्वारा निःस्वार्थ भाव से दिये हुए (फासुयं) उस प्रासुक एव निर्दोष आहार को (दोस-वज्जिय) संयोजनादि दोषो को टालकर (भुंजिज्जा) सम-भाव पूर्वक भोगवे ॥६८-६६॥

दुल्लहा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजोवी दो वि गच्छति सुग्गइ ।।१००।।त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ :— (मुहादाई) प्रत्युपकार की आशा न रखकर नि स्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले दाता (उ-हु) निश्चय ही (दुल्लहा-दुल्लहाओ) दुर्लभ है और इसी तरह (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव नि स्पृह भाव से शुद्ध भिक्षा लेकर सयम यात्रा का निर्वाह करने वाले भिक्षु (वि) भी (दुल्लहा) दुर्लभ हैं । (मुहादाई) नि स्वार्थ भाव से दान देने वाले दाता और (मुहाजोवी) निरपेक्ष एव नि स्पृह भाव से दान लेने वाले भिक्षु (दो वि) दोनो ही (सुग्गइ) सुगति मे (गच्छति) जाते हैं ॥१००॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

पिण्डैषणा नामक पांचवें अध्ययन का दूसरा उद्देशा

पडिग्गहं संलिहित्ताण, लेवमायाए संजए ।
दुगंध वा सुगध वा, सव्व भुजे न छड्डुए ।।१।।

अन्वयार्थः— (संजए) साधु (पडिग्गह) पात्र मे लगे हुए (लेवमायाए-लेवमायाइ-य) लेप मात्र को (वा) चाहे वह (दुगध) अमनोज्ञ गध वाला हो (वा) अथवा (सुगध) सुरभि गन्ध वाला हो (सव्व) उस सब को (सलिहित्ताण) अगुली से पोंछकर (भुजे) खा जाय किन्तु (न छड्डुए) कुछ भी न छोडे ।।१।।

सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेण न सथरे ।।२।।

तओ कारणमुप्पण्णे, भत्तपाण गवेसए ।
विहिणा पुव्वउत्तेण, इमेणं उत्तरेण य ।३॥

अन्वयार्थः— (सेज्जा) उपाश्रय मे (य) अथवा (निसीहियाए) आहार करने के स्थान मे (समावन्नो) बैठ कर मुनि (गोयरे) गोचरी से मिले हुए आहार को (भुञ्चाण) यतना पूर्वक भोगवे किन्तु (जइ) यदि कदाचित् (तेण) वह आहार (अयावयट्ठा) अपर्याप्त हो-आवश्यकता से कम हो और उस आहार से (न सथरे) न सरे अथवा (कारणं) अन्य कोई कारण (उप्पण्णे-समुप्पण्णे) उत्पन्न हो जाय (तओ) तो साधु (पुव्वउत्तेण-वुत्तेण) पहले उद्देशे मे कही हुई (य) तथा (इमेण) इस (उत्तरेण) दूसरे उद्देशे मे कही जाने वाली (विहीणा) विधि से (भत्तपाण) आहार पानी की (गवेसए) फिर गवेषणा करे ॥२-३॥

भावार्थः— गोचरी जाकर लाया हुआ आहार यदि पर्याप्त न हो तो मुनि विधिपूर्वक आहार लाने के लिए दुबारा जा सकता है ।

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।
अकाल च विवज्जित्ता, काले काल समायरे ।।४॥

अन्वयार्थः— (भिक्खू) साधु (कालेण) जिस गाव मे जो समय भिक्षा का हो उसी समय मे (निक्खमे) भिक्षा के लिए जावे (य) और (कालेण) भिक्षा काल समाप्त होने पर (पडिक्कमे) वापिस लौट आवे (च) और (अकाल) अकाल को (विवज्जित्ता-विवज्जिज्जा) छोड़कर (काले) उचित काल मे (काल) उस काल के योग्य (समायरे)

आचरण करे—अर्थात् गोचरी के काल मे गोचरी जावे और स्वाध्याय के काल मे स्वाध्याय करे ॥४॥

उत्थानिका:— अकाल मे भिक्षा के लिए जाने से जो दोष होते है, उनको बताने के लिए टीकाकार ने एक दृष्टान्त की कल्पना की है। एक मुनि अकाल मे भिक्षा लेने के लिए गये। भिक्षा न मिलने से वे वापिस लौट रहे थे। उन्हें म्लानमुख देख कर एक कालचारी साधु उनसे पूछता है कि हे मुने! आपको भिक्षा मिली या नहीं? तब वह कहता है कि स्थण्डिल एवं सुनसान जगल के समान कंजूसों के इस गाव मे भिक्षा कहां पडी है? इस पर वह कालचारी साधु कहता है कि :—

अकाले चरसि भिक्खू, काल न पडिलेहसि।
अप्पाण च किलामेसि, सनिवेस च गरिहसि ॥५॥

अन्वयार्थ:— (भिक्खू) हे भिक्षु! आप (अकाले) असमय मे (चरसि) गोचरी के लिए जाते हो (च) और (काल) गोचरी के काल का (न पडिलेहसि) ख्याल नही रखते हो, अतः (अप्पाण) अपनी आत्मा को (किलामेसि) खेदित करते हो (च) और (सनिवेस) गाँव की भी (गरिहसि) निन्दा करते हो ॥५॥

भावार्थ:— महापुरुष कहते है कि—हे भिक्षु! यदि समय का ध्यान रखे विना तू किसी ग्रामादि स्थान मे भिक्षा के लिए चला जायगा और समय की अनुकूलता-प्रतिकूलता न देखेगा तो तेरी आत्मा को खेद होगा और आहारादि न मिलने से तू ग्राम की भी निन्दा करेगा।

सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं।
अलाभुत्ति न सोइज्जा, तवुत्ति अहियासए ॥६॥

अन्वयार्थ — (भिक्खू) साधु (काले) भिक्षा का समय (सइ) होने पर (चरे) गोचरी के लिए जावे और (पुरिसकारिय) भिक्षा के लिए घूमने रूप पुरुषार्थ (कुज्जा) करे (अलाभुत्ति) यदि भिक्षा का लाभ न हो तो फिर (न सोइज्जा) शोक न करे किन्तु (तवुत्ति) आज सहज ही में मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप होगा, ऐसा विचार कर (अहियासए) क्षुधा परीषह को समभाव पूर्वक सहन करे ।६।

तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया ।
त उज्जुय न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥७।

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (उच्चावया) उच्च जाति के हंसादि पक्षी और नीच जाति के कौए आदि (पाणा) प्राणी यदि (भत्तट्ठाए) चुगा पानी के लिए किसी स्थान पर (समागया) इकट्ठे हुए हो तो साधु (त उज्जुयं) उन प्राणियो के सामने (न गच्छिज्जा) न जावे किन्तु (जयमेव) यतना पूर्वक अन्य मार्ग से (परक्कमे) जावे जिससे उन प्राणियो के चुग्गा पानी मे अन्तराय न पड़े ॥७॥

गोयरग्ग पविट्ठो य, न निसीज्ज कत्थई ।
कहं च न पवधिज्जा, चिट्ठित्ताण व सजए ॥८॥

अन्वयार्थः— (गोयरग्गपविट्ठो य) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) साधु (कत्थई) कही पर भी (न) न (निसीइज्जा) बैठे (च) और (चिट्ठित्ताण व) खड़ा रहकर भी (कह) कथा वार्ता (न) न (पवधिज्जा) कहे ॥८॥

अग्गल फलिह दार, कवाड वावि सजए ।
अवलंबिया न चिट्ठिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ॥९॥

अन्वयार्थः— (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) छः काय के जीवो की रक्षा करने वाला सयती (मुणी) मुनि (अग्गल) आगल-भोगल को (फलिह) फलक अर्थात् दोनो किवाडों को रोक रखने वाले काठ को, होड़ा को (दार) दरवाजे को (वावि) अथवा (कवाड) किवाड को (अवलबिया) पकडकर या सहारा लेकर (न चिट्ठिज्जा) खडा न रहे क्योकि इस प्रकार खडे रहने से आत्मविरावना एव सयमविराधना होने की सभावना रहती है ॥६॥

समण माहण वावि, किविण वा वणीमग ।
उव सकमत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥१०॥

तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे ।
एगतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज सजए ॥११॥

अन्वयार्थः—(समण) श्रमण (वावि) अथवा (माहण) ब्राह्मण (किविण) कृपण (वा) अथवा (वणीमग) भिखारी आदि (भत्तट्ठापाणट्ठाए) अन्न पानी के लिए (उवसकमत्तं) गृहस्थ के द्वार पर खड़े हो तो (सजए) सयमी साधु (त) उनको (अइक्कमित्तु) लाघकर (न पविसे) गृहस्थ के घर मे न जावे और (चक्खुगोयरे) जहां पर उस दाता की और भिखारियो की दृष्टि पडती हो वहां पर भी (न चिट्ठे) खड़ा न रहे किन्तु (सजए) वह सयती साधु (एगंत) एकान्त स्थान में जहां पर उनकी दृष्टि न पडती हो (तत्थ) वहाँ (अवक्कमित्ता) जाकर (चिट्ठिज्ज) यतना पूर्वक खड़ा रहे ॥१०-११॥

वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा ।
अप्पत्तिय सिया हुज्जा, लहुत्त पवयणस्स वा ॥१२॥

अन्वयार्थः – उन्हे उल्लघन करके जाने से या उनके सामने खडे रहने से (सिया) शायद (तस्स) उस (वणी-मगस्स) याचक को (वा) अथवा (दायगस्स) दाता को (वा) अथवा (उभयस्स) दाता और याचक दोनो को (अप्पत्तिय) अप्रीति-द्वेष उत्पन्न होगा (वा) और (पवय-णस्स) प्रवचन की-जिनशासन की (लहुत) लघुता (हुज्जा) होगी, अत उन्हे उल्लघन करके गृहस्थ के घर मे जाना साधु का कल्प नही है ॥१२॥

पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए ।
उवसकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥१३॥

अन्वयार्थः— (दिन्ने) उन याचकों को भिक्षा देने पर (वा) अथवा (पडिसेहिए) दाता के निषेध कर देने पर (तम्मि) जब वे याचक (तओ) गृहस्थ के घर से (नियत्तिए) लौटकर चले जाय तब (सजए) साधु (भत्तट्ठापाण-ट्ठाए व) आहार पानी के लिए वहाँ (उवसकमिज्ज) जावे ॥१३॥

उप्पल पउम वावि, कुमुयं वा मगदतिय ।
अन्न वा पुप्फसच्चित्त, त च सलुंचिया दए ॥१४॥

तं भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥१५॥

उप्पल पउम वावि, कुमुयं वा मगदंतिय ।
अन्न वा पुप्फसच्चित्त, त च सम्मद्दिया दए ॥१६॥

त भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥१७॥

अन्वयार्थः—(उप्पल) नीलोत्पल-नीला कमल (वावि) अथवा (पउम) पद्म-लाल कमल (कुमुय) चन्द्रविकासी सफेद कमल (वा) अथवा (मगदतिय) मालती-मोगरे का फूल (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार का दूसरा कोई (पुप्फ) फूल (सच्चित्त) जो सचित्त हो (त) उसको (सलुचिया) छेदन भेदन करके (वा) अथवा (समद्दिया) पैरो आदि से कुचलकर अथवा सघट्टा करके (दए) आहार पानी दे तो साधु दाता से कहे कि ऐसा आहार पानी मुझे नही कल्पता है । 'त भवे' का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥१४-१५-१६-१७॥

सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालिय ।
मुणालिय सासव नालिय, उच्छुखड अनिव्वुड ॥१८॥

तरुणग वा पवाल, रुक्खस्स तणगस्स वा ।
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥१९॥

अन्वयार्थः— (सालुयं) कमल का मूल (विरालियं) पलास का कन्द (कुमुयं) चन्द्रविकासी सफेद कमल (उप्पलनालियं) कमल नाल (मुणालिय) कमल तन्तु (सासवनालियं) सरसो की भाजी या नाल (वा) अथवा (उच्छुखड) ईख के टुकडे-गंडेरी ये सब पदार्थ यदि (अनिव्वुड) शस्त्र परिणत न हो तो साधु ग्रहण न करे तथा (रुक्खस्स) वृक्ष के (वा) अथवा (तणगस्स) तृण के (अन्नस्स वावि) अथवा इसी प्रकार की दूसरी किसी भी (हरियस्स) हरित काय के (तरुणगं) कच्चे पत्ते (वा) अथवा (पवाल)

कच्ची कोपल आदि (आमगं) जो सचित्त हो तो उन्हे (परिवज्जए) साधु ग्रहण न करे ॥१८-१९॥

तरुणिय वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइ ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥२०॥

अन्वयार्थ.—(तरुणिया) जिसके बीज नही पके हैं ऐसी (छिवाडिं) मूग आदि की फली जो (आमिया) कच्ची हो (वा) अथवा (सइ) एक बार की (भज्जिय) भुनी हुई हो जिसमें पक्वापक्व-मिश्र की शंका हो, ऐसी फली यदि कोई साधु को देने लगे तो (दितियं) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का पदार्थ (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ।२०॥

तहा कोलमणुस्सिन्न, वेलुय कासवनालियं ।
तिलपप्पडगं नीमं, आमग परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ—(तहा) इसी प्रकार (अणुस्सिन्न) अग्नि आदि से बिना पकाया हुआ (कोल) कोल-बोरकूट (वेलुयं) वंश करेला (कासवनालिय) श्रीपर्णी का फल (तिलपप्पडग) तिल पापडी (नीमं) नीम का फल-नीबोली ये सब यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे ॥२१॥

तहेव चाउल पिट्ठ, वियडं वा तत्तऽनिव्वुडं ।
तिल पिट्ठ पूइपिन्नागं, आमग परिवज्जए ॥२२॥

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (चाउल) चावलों का तथा गेहू आदि का (पिट्ठ) तत्काल का पीसा हुआ आटा (वा) अथवा (तत्तऽनिव्वुडं) पहले गरम किया हुआ

अन्वयार्थ — (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (सिया) कदाचित् ऐसा भी करे कि (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार पानी को (लद्धु) प्राप्त करके उसमे से (भद्दग भद्दग) अच्छे अच्छे सरस आहार को (भोच्चा-भुच्चा) वही कही पर एकान्त स्थान मे खाकर बाकी बचा हुआ (विवन्न) विवण और (विरस) नीरस आहार (आहरे) अपने स्थान पर लावे ॥३३॥

जाणतु ता इमे समणा, आययट्ठी अयं मुणी ।
सतुट्ठो सेवए पत, लूहवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

अन्वयार्थः— (ता) अच्छे-अच्छे सरस आहार को मार्ग मे ही खा जाने वाला रसलोलुपी साधु ऐसा विचार करता है कि (इमे) स्थानक मे रहे हुए (समणा) साधु इस रूखे-सूखे आहार को देखकर (जाणंतु) ऐसा जानेंगे कि (अय) यह (मुणी) मुनि (सतुट्ठो) वड़ा सतोषी और (आययट्ठी) वडा आत्मार्थी है इसीलिए (लूहवित्ती) सरस आहार की आकांक्षा नही करता किन्तु (सुतोसओ) जैसा आहार मिलता है उसी में सतोष करता है और (पत) अन्त प्रान्त नीरस आहार का (सेवए) सेवन करता है। ३४॥

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माण कामए ।
वहु पसवई पावं, मायासल्ल च कुव्वइ ॥३५॥

अन्वयार्थः— इस प्रकार छल कपट से (पूयणट्ठा) पूजा को चाहने वाला (जसोकामी) यश की कामना करने वाला और (माणसम्माण कामए) मान सम्मान का अभि-

लापी वह रसलोलुपी साधु (वहुं) बहुत (पाव) पाप (पसवई) उपार्जन करता है (च) और (मायासल्ल) माया रूपी शल्य का (कुव्वइ) सेवन करता है ॥३५॥

सुर वा मेरग वावि, अन्न वा मज्जग रस ।
ससक्ख न पिवे भिक्खू, जस सारक्खमप्पणो ॥३६॥

अन्वयार्थः— (अप्पणो) अपने (जस) संयम रूप निर्मल यश की (सारक्ख) रक्षा करने वाला (भिक्खू) साधु (ससक्ख) त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ भगवान् की साक्षी से (सुर) जौ आदि के आटे से बनी हुई मदिरा (वा) अथवा (मेरग) महुआ से बनी हुई मदिरा (वावि) अथवा (मज्जग) मद को उत्पन्न करने वाले (अन्न वा) दूसरे किसी भी (रस) रस को (न पिवे) न पीवे ॥३६॥

पियए एगओ तेणो, न मे कोइ वियाणइ ।
तस्स पस्सह दोसाइ, नियडि च सुणेह मे ॥३७॥

अन्वयार्थः— (मे) मुझे (कोई) कोई भी (न) नहीं (वियाणइ) देखता है— ऐसा मानकर जो (तेणो) भगवान् की आज्ञा का लोप करने वाला चोर साधु (एगओ) एकान्त स्थान मे लुक छिपकर (पियए) मदिरा पीता है (तस्स) उसके (दोसाइ) दोषो को (पस्सह) देखो (च) और (मे) मैं उसके (नियडि) मायाचार का वर्णन करता हू सो (सुणेह) तुम उसे सुनो ॥३७।

वड्ढई सुडिया तस्स, माया मोस च भिक्खुणो ।
अयसो य अनिव्वाणं सयय च असाहुया ॥३८॥

अन्वयार्थः— (तस्स) मदिरा पान करने वाले

(भिक्खुणो) साधु की (सुडिया) आसक्ति (माया) कपट (च) और (मोम) मृपावाद (अयसो) अपयश (अ) तथा (अनिव्वाण) अतृप्ति आदि दोष (सयय) निरतर (वड्ढई) वढते रहते हैं इस प्रकार वह (असाहुया) असाधुता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सयम से भ्रष्ट हो जाता है ॥३८॥

निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
तारिसो मरणते वि, न आराहेइ सवर ॥३९॥

अन्वयार्थ·— (जहा) जिस प्रकार (तेणो) चोर (अत्तकम्मेहि) अपने किये हुए दुश्चरित्रो से (निच्चुव्विग्गो) हमेशा व्याकुल बना रहता है उसी प्रकार (तारिसो) वह मदिरा पीने वाला (दुम्मई) दुर्बुद्धि साधु सदा व्याकुल एव भयभीत बना रहता है, उसके चित्त को कभी शान्ति नही मिलती ऐसा साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (न आराहेइ) आराधना नही कर सकता ॥३९॥

आयरिए नाराहेइ, समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि ण गरिहति, जेण जाणति तारिसं ॥४०॥

अन्वयार्थः—(तारिसो) वह मदिरा पीने वाला साधु (आयरिए) आचार्य महाराज तथा (समणे आवि) साधुओ की किसी की भी (नाराहेइ) विनय वैयावच्च आदि से आराधना नही कर सकता और (जेण) जब (गिहत्था) गृहस्थ लोग (ण) उस साधु के (तारिसं) मदिरा पान रूपी दुर्गुण को (जाणति) जान लेते है तब (वि) वे भी (गरिहति) उसकी निन्दा करते हैं ॥४०॥

एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए ।
तारिसो मरणते वि, नाराहेइ सवर ॥४१॥

अन्वयार्थः— (एव तु) इस प्रकार (अगुणप्पेही) अवगुणो को धारण करने वाला (च) और (गुणाण) ज्ञानादि गुणो को (विवज्जए-ओ) छोड़ने वाला (तारिसो) वह साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म को (नाराहेइ) आराधना नही कर सकता ।४१।

तव कुव्वइ मेहावी, पणीय वज्जए रस ।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥४२॥

अन्वयार्थः— (मज्जप्पमायविरओ) मदिरा पान एव प्रमादादि दुर्गुणो से रहित (तवस्सी) तपस्वी (मेहावी) बुद्धिमान साधु (पणीयं) स्निग्ध (रस) रसो को (वज्जए-ओ) छोडकर (अइउक्कसो) निरभिमान पूर्वक (तव) तपस्या (कुव्वइ) करता है ॥४२॥

तस्स पस्सह कल्लाण, अणेगसाहुपूइय ।
विउल अत्थसजुत्त, कित्तइस्स सुणेह मे ॥४३॥

अन्वयार्थ.—गुरु शिष्यो से कहते हैं कि हे शिष्यो ! (तस्स) उपरोक्त गुणो के धारक साधु का (कल्लाण) कल्याण सयम (अणेगसाहुपूइय) अनेक मुनियो द्वारा पूजित एव प्रशंसित (विउल) महान् (अत्थसजुत्त) मोक्षरूपी अर्थ से युक्त होता है (पस्सह) तुम उसे देखो तथा (कित्तइस्स) मैं उस साधु के गुणो का वर्णन करूगा अत. तुम (मे) मुझसे उन गुणो को (सुणेह) सुनो ॥४३॥

एवं तु गुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए ।
तारिसो मरणते वि, आराहेइ सवर ॥४४॥

किन्तु मर्यादा उपरांत हो जाने के कारण ठडा होकर जो सचित्त हो गया है अथवा मिश्रित एव अपक्व (वियड) जल (तिलपिट्ठ) तिलकूटा (पूइपिन्नागं) सरसों की खल ये सब यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे ॥२२।

कविट्ठ माउलिगं च, मूलगं मूलगत्तियं ।
आमं असत्थपरिणयं, मणसा वि न पत्थए ।२३॥

अन्वयार्थः— (कविट्ठ) कविठ फल (माउलिग) मातुलिङ्ग-बिजौरा (मूलग) मूला (च) और (मूलगत्तिय) मूले के टुकड़े—ये सब यदि (आम) सचित्त हो (असत्थ-परिणय) सम्यक् प्रकार से शस्त्र से परिणत न हुए हो तो साधु इन पदार्थों को (मणसा वि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे ॥२३॥

तहेव फलमथूणि, बीयमथूणि जाणिया ।
विहेलग पियाल च, आमग परिवज्जए ॥२४॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (फलमथूणि) बोर आदि फलो का चूर्ण (बीयमथूणि) बीजों का चूर्ण (विहे-लगं) बहेडा (च) और (पियाल) रायण का फल इन सबको (आमग) सचित्त (जाणिया) जानकर साधु इन्हे (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे ॥२४॥

समुयाण चरे भिक्खू, कुलमुच्चावय सया ।
नीय कुलमइक्कम्म, ऊसढ नाभिधारए ॥२५॥

अन्वयार्थ— (भिक्खू) साधु (सया) हमेशा (उच्चा-वय) ऊच और नीच-अर्थात् धनवान् और गरीब (कुल)

कुल-घर मे (समुयाण) सामुदानिक रूप से (चरे) गोचरी जावे किन्तु (नीय) गरीव (कुल) कुल-घर को (अइक्कम्म) लांघ कर (ऊसढ) धनवान् के घर पर (नाभिधारए) न जावे ॥२५॥

भावार्थः—श्रीमन्त हो या गरीब हो किन्तु साधु उन दोनो को समान दृष्टि से देखे और समान भाव से प्रत्येक प्रतीति वाले कुल मे गोचरी के लिए जावे ।

अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीइज्ज पडिए ।
अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायण्णे एसणारए ॥२६॥

अन्वयार्थः— (मायण्णे) आहार पानी की मात्रा को जानने वाला (एसणारए) आहार को शुद्धि मे तत्पर (पडिए) बुद्धिमान् साधु (भोयणम्मि) भोजन मे (अमुच्छियो) गृद्धि भाव न रखता हुआ तथा (अदीणो) दीनता न दिखलाता हुआ (वित्ति) गोचरी की (एसिज्जा) गवेषणा करे, यदि ऐसा करते हुए कदाचित् भिक्षा न मिले तो (न विसिइज्ज-न-विसीएज्ज) खेद नही करे ॥२६॥

वहुं परघरे अत्थि, विविह खाइम साइम ।
न तत्थ पडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो न वा ॥२७॥

अन्वयार्थः— (परघरे) गृहस्थ के घर मे (खाइम) खादिम, वादाम, पिस्ता आदि मेवा और (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि (विविह) अनेक प्रकार के (वहु) वहुत से (अत्थि) पदार्थ होते हैं यदि गृहस्थ साधु को वे पदार्थ न देवे तो (पडिओ) वुद्धिमान् साधु (तत्थ) उस गृहस्थ पर (न कुप्पे) क्रोध न करे परन्तु ऐसा विचार

करे कि (परो) यह गृहस्थ है (इच्छा) इसकी इच्छा हो तो (दिज्ज) देवे (वा) अथवा इच्छा न हो तो (न) न देवे ॥२७।

सयणासणवत्थ वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ ।२८।

अन्वयार्थः—(सयण) शय्या (आसण) आसन (वत्थ) वस्त्र (वा) अथवा (भत्तं) आहार (व) और (पाण) पानी जो चाहे (पच्चक्खेविय) सामने रखे हुए (दीसओ) दिखाई देते हो फिर भी गृहस्थ (अदितस्स) यदि उन पदार्थों को न दे तो भी (सजए) साधु (न कुप्पिज्जा) उस पर क्रोध न करे क्योंकि दे या न दे गृहस्थ की मरजी है।२८।

इत्थिया पुरिस वा वि, डहर वा महल्लगं।
वदमाणं न जाइज्जा, नो य ण फरुस वए ॥२९॥

अन्वयार्थः—(वदमाण) वन्दना करते समय (इत्थिय) किसी भी स्त्री (वावि) अथवा (पुरिस) पुरुष (डहरं) वालक (वा) अथवा (महल्लग) वृद्ध से (न जाइज्जा) साधु किसी प्रकार की याचना न करे (य णं) तथा आहार न देने वाले गृहस्थ को (फरुस) कठोर वचन भी (नो वए) न कहे ॥२९॥

जे न वदे न से कुप्पे, वदिओ न समुक्कसे।
एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ।३०॥

अन्वयार्थः— (जे) जो गृहस्थ (न वदे) साधु को वन्दना न करे (से) उस पर (न कुप्पे) क्रोध न करे और (वदिओ) चाहे राजा-महाराजा आदि वन्दना करते हों

तो (न समुक्कसे) अभिमान भी न करे कि देखो ! मैं कैसा माननीय हूं जो राजा-महाराजा भी मेरे चरणो मे गिरते हैं (एव) इस प्रकार (अन्नेसमाणस्स) भगवान् की आज्ञा के आराधक मुनि का (सामण्ण) साधुत्व-चारित्र (अणुचिट्ठइ) निर्मल रहता है ।।३०।।

सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ ।
मामेय दाइय सत दट्ठूण सयमायए ।३१।

अन्वयार्थः— (सिया) यदि कदाचित् (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (लद्धु) सरस आहार मिलने पर (लोभेण) खाने के लोभ से (विणिगूहइ) उसे छिपा लेवे नीरस वस्तु को उपर रखकर सरस वस्तु को नीचे दबा देवे क्योकि (माम) यदि मैं (एय) इस आहार को (दाइय सत) गुरु महाराज को दिखलाऊँगा तो (दट्ठूण) इस सरस आहार को देखकर (सयमायए) शायद वे स्वय सबका सब ले लेवे मुझे कुछ भी न दें ।।३१।।

अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहु पावं पकुव्वइ ।
दुत्तोसओ य सो होइ, निव्वाण च न गच्छइ ।।३२।

अन्वयार्थः - (अत्तट्ठागुरुओ) केवल अपने पेट भरने मे लगा हुआ (लुद्धो) रस लोलुपी (सो-से) साधु (बहुं) बहुत (पाव) पाप (पकुव्वइ) उपार्जन करता है (य) और सदा (दुत्तोसओ) असन्तोपी (होइ) बना रहता है (च) ऐसा साधु (निव्वाण) मोक्ष (न गच्छइ) प्राप्त नही कर सकता ।।३२।।

सिया एगइओ लद्धु, विविह पाणभोयण ।
भद्दग भद्दगं भोच्चा, विवन्न विरसमाहरे ।।३३।।

अन्वयार्थः— (एवंतु) इस प्रकार (गुणप्पेही-सगुणप्पेही) ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाला (च) और (अगुणाण) दुर्गुणों को (विवज्जए-ओ) छोडने वाला (तारिसो) साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक (सवर) ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म की (आराहेइ) भली प्रकार आराधना करता रहता है अर्थात् मरणात कष्ट पडने पर भी वह ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म को नही छोडता ।४४।

आयरिए आराहेइ, समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि ण पूयति. जेण जाणति तारिस ॥४५॥

अन्वयार्थः (तारिसो) उपरोक्त गुणो का धारक साधु (आयरिए) आचार्य महाराज की तथा (समणे आवि) दूसरे मुनियो की (आराहेइ) विनय वैयावच्च द्वारा आराधना करता है और (जेण) जब (गिहत्था वि) गृहस्थ लोगो को भी (ण) उसके (तारिस) उन गुणों का (जाणति) पता लग जाता है तब वे (पूयति) उसकी भक्ति करते हैं अर्थात् विशेष सन्मान की दृष्टि से देखते हैं और उसके गुणो की प्रशसा करते हैं ॥४५॥

तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे ।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विस । ४६॥

अन्वयार्थः (जे) जो (नरे) साधु (तवतेणे) तप का चोर (वयतेणे) वचन का चोर (य) और (रूवतेणे) रूप का चोर (य) तथा (आयार भावतेणे) आचार और भाव का चोर होता है वह (देवकिव्विसं) नीच जाति के किल्विपी देवों मे (कुव्वइ) उत्पन्न होता है ॥४६॥

लद्धूण वि देवत्तं, उववन्नो देव किव्विसे ।
तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इम फल ॥४७॥

अन्वयार्थ— उपरोक्त चोर साधु (देवत्त) देवगति को (लद्धूण वि) प्राप्त करके भी (देव किव्विसे) अस्पृश्य जाति के किल्विषी देवो मे (उववन्नो) उत्पन्न होता है। (तत्थावि) वहाँ पर भी (से) वह (न याणाइ) यह नही जानता कि (किं) मैंने ऐसा कौनसा कर्म (किच्चा) किया है जिससे (मे) मुझे (इम) यह (फल) फल प्राप्त हुआ है ॥४७॥

तत्तो वि से चइत्ताण, लब्भिही एलमूयग ।
नरग तिरिक्खजोणि वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा ॥४८॥

अन्वयार्थः—(से) वह किल्विषी देव (तत्तो वि) वहाँ से (चइत्ताण) चवकर (एलमूयगं) मूक-जो बोल न सके ऐसे बकरे आदि की योनि को पाकर फिर (नारग) नरक गति को (वा) अथवा (तिरिक्खजोणि) तिर्यंच योनि को (लब्भिही-लब्भइ) प्राप्त होता है (जत्थ) जहाँ पर (बोहि) बोधि-जिनधर्म की प्राप्ति होना (सुदुल्लहा) बडा दुर्लभ है ॥४८॥

एयं च दोस दट्ठूणं, णायपुत्तेण भासिय ।
अणुमायपि मेहावी, मायामोस विवज्जए ॥४९॥

अन्वयार्थः— (एय च) इस प्रकार (दोस) पूर्वोक्त दोषों को (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने (दट्ठूण) केवलज्ञान से देखकर (भासिय) फरमाया है अत (मेहावी) बुद्धिमान् साधु (अणुमायपि) अणुमात्र भी (मायामोस) कपटपूर्ण असत्य भाषण को (विवज्जए) वर्जे-किंचिन्मात्र भी माया-मृषावाद का सेवन न करे ॥४९॥

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाण सगासे ।
तत्थ भिक्खु सुप्पणिहिइंदिए, तिव्वलज्जगुणवविहरिज्जासि
॥ ५० त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः–– (सुप्पणिहि इंदिए–सुप्पणिहिंदिए) जितेन्द्रिय एवं एकाग्रचित्त वाला (तिव्वलज्ज) अनाचार से अत्यन्त लज्जा रखने वाला (गुणव) गुणवान् (भिक्खु-भिक्खू) साधु (बुद्धाण) तत्त्व को जानने वाले (संजयाण) साधुओं के (सगासे) पास (भिक्खेसणसोहिं) भिक्षा के आधा कर्मादि दोषों को (सिक्खिऊण) सीखकर (तत्थ) एषणा समिति मे (विहरिज्जासि) उपयोग पूर्वक विचरे ॥५०॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

महाचार कथा नामक छट्ठा अध्ययन

नाणदसण सपन्न, सजमे य तवे रय ।
गणिमागम सपन्न, उज्जाणम्मि समोसढ ॥१॥

रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया ।
पुच्छति निहुअप्पाणो, कह भे आयार गोयरो ॥२॥

अन्वयार्थ — (नाणदसण सपन्न) एक समय सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन के धारी (सजमे) सतरह प्रकार सयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रय) रत (आगमसपन्न) आचाराङ्गादि अङ्गोपाङ्ग रूप आगम के ज्ञाता (गणि) छत्तीस गुणो के धारक आचार्य महाराज (उज्जाणम्मि) गाँव के समीप के बगीचे मे (समोसढ) पधारे तब (रायाणो) राजा (य) और (रायमच्चा) राज-मत्री (माहणा) ब्राह्मण (अदुव) और (खत्तिया) क्षत्रिय (निहु अप्पाणो) मन की चचलता को छोडकर भक्ति और विनय पूर्वक (पुच्छति) उनसे पूछते हैं कि हे भगवन् ! (भे) आप लोगो का (आयार गोयरो) आचार और गोचर भिक्षावृत्ति आदि धर्म (कह) किस प्रकार का है ॥१-२॥

तेंसि सो निहुओ दतो, सव्वभूय सुहावहो ।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो ॥३॥

अन्वयार्थः—(निहुओ) निश्चल चचलता रहित (दतो)

इन्द्रियो के दमन करने वाले (सव्वभूय सुहावहो) सब प्राणयो का हित चाहने वाले (सिक्खाए) ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा से (सुसमाउत्तो) सुसपन्न (वियक्खणो) विचक्षण-धर्मोपदेश मे कुशल (सो) वे आचार्य महाराज (तेसिं) उन राजा आदि को (आयक्खइ) जैन साधुओ का आचार गोचर रूप धर्म कहते हैं अर्थात् उनके प्रश्न का उत्तार देते हैं ॥३॥

हदि धम्मत्थकामाण, निग्गथाण सुणेह मे ।
आयार गोयरं भीम, सयल दुरहिट्ठिय ॥४॥

अन्वयार्थः— (हदि) हे देवानुप्रियो ! (धम्मत्थ-कामाण) धर्म-श्रुतचारित्र रूप धर्म और अर्थ-मोक्ष के लिए अभिलाषी (निग्गथाण) निग्रन्थ मुनियो का (सयल) समस्त (आयार गोयर) आचार गोचर जो कि (भीम) कर्म रूपी शत्रुओ के लिए भयंकर है तथा (दुरहिट्ठिय) जिसे धारण करने मे कायर पुरुष घबराते हैं ऐसे आचार गोचर का (मे) मैं वर्णन करता हूं अत· (सुणेह) तुम सावधान होकर सुनो ।४॥

नन्नत्थ एरिसं वुत्त, ज लोए परमदुच्चर ।
विउलट्ठाण भाइस्स, न भूय न भविस्सइ ॥५॥

अन्वयार्थ— (विउलट्ठाण भाइस्स) विपुल स्थान मोक्ष मार्ग के आराधक मुनियों का (एरिस) इस प्रकार का उन्नत आचार (अन्नत्थ) जिन शासन के अतिरिक्त अन्य मतो में (न वुत्त) कही भी नही कहा गया है (ज) जो (लोए) लोक मे (परमदुच्चर) अत्यन्त दुष्कर है अर्थात्

जिसका पालन करना बहुत कठिन है। जिनशासन के सिवाय अन्य मतो मे ऐसा आचार (न भूय) न तो गत काल मे कही हुआ है और (न भविस्सइ) न आगामी काल मे कही होगा और न वर्तमान काल में कहो है ॥५॥

सखुड्डगवियत्ताण, वाहियाण च जे गुणा।
अखडफुडया कायव्वा, त सुणेह जहा तहा ॥६॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (गुणा) गुण (सखुड्डगवियत्ताण) वालक एव वृद्धो को (वाहियाण च) स्वस्थ एव अस्वस्थ सभी को सब अवस्थाओं मे (अखडफुडिया) अखड एव निर्दोष रूप से अर्थात् देश विराधना और सर्व विराधना से रहित (कायव्वा) धारण करने चाहियें (त) उन गुणो का (जहा) जैसा स्वरूप है (तहा) वंसा ही मैं वर्णन करता हूं (सुणेह) अत. तुम सावधान होकर सुनो ॥६॥

दस अट्ठ य ठाणाइ, जाइ वालोऽवरज्झइ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गथत्ताउ भस्सइ ॥७॥

अन्वयार्थः — (दस अट्ठ य) साधु आचार के अठारह (ठाणाइ) स्थान हैं। (वालो) जो वाल-अज्ञानी साधु (जाइ) इन (तत्थ) अठारह स्थानो में से (अन्नयरे) किसी एक भी (ठाणे) स्थान की (अवरज्झइ) विराधना करता है वह (निग्गंथत्ताउ-निग्गथत्ताओ) साधुपने से (भस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है। ७।

वयछक्कं कायछक्क, अकप्पो गिहिभायण।
पलियक निसज्जा य, सिणाणं सोहवज्जण ॥८॥

अन्वयार्थः— (वयछक्क) छ. व्रत अर्थात् प्राणाति-

पात विरमण आदि पांच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन त्याग रूप छः व्रतो का पालन करना (कायछक्क) छ काय अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्पकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छः काय जीवो की रक्षा करना (अकप्पो) अकल्पनीय पदार्थों को ग्रहण न करना। (गिहिभायण) गृहस्थ के वर्तन मे भोजनादि न करना (पलियक) पलग पर न बैठना (निसज्जा-निसिज्जा-निसेज्जा) गृहस्थ के आसन पर न बैठना (सिणाण) स्नान (य) तथा (सोहवज्जण) शरीर की शोभा का त्याग करना, साधु के ये अठारह स्थान हैं ॥८॥

तत्थिम पढम ठाण, महावीरेण देसिय।
अहिसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु सजमो॥९॥

अन्वयार्थः— (सव्वभूएसु) प्राणी मात्र पर (सजमो) दया रूप (अहिसा) अहिसा (निउणा) अनन्त सुखो को देने वाली है ऐसा (महावीरेण) भगवान् महावीर ने (दिट्ठा) केवलज्ञान मे देखा है। इसीलिए भगवान् ने (तत्थ) उपरोक्त अठारह स्थानो मे (इम) इस अहिसा व्रत को (पढग) पहला (ठाण) स्थान (देसिय) कहा है ॥९॥

जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाण वा, न हणे णा वि घायए॥१०॥

अन्वयार्थः— (लोए) चौदह राजू परिमाण लोक मे (जावति) जितने (तसा) त्रस (अदुव) अथवा (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी है (ते) उनको (जाण) जानकर (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से-प्रमादवश (न हणे)

स्वय मारे नही (णो वि) और न दूसरों से (घायए) घात ही करावे इसी प्रकार मारने वाले की अनुमोदना भी न करे ॥१०॥ हिंसा क्यो न करनी चाहिए इसके लिए सूत्रकार कहते हैं कि –

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयति ण ॥११॥

अन्वयार्थः— (सव्वे वि) त्रस स्थावर आदि सभी (जीवा) जीव (जीविउ) जीना (इच्छति) चाहते है लेकिन (न मरिज्जिउ) मरना कोई भी नही चाहता (तम्हा) इसीलिए (निग्गथा) छ काया के रक्षक निर्ग्रन्थ साधु (ण) उस (घोर) महा भयकर (पाणिवह) प्राणिवध-जीव हिंसा का (वज्जयति) सर्वथा त्याग करते है ॥११॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसग न मुस वूया, नो वि अन्न वयावए ॥१२॥

अन्वयार्थः— साधु (अप्पणट्ठा) अपने खुद के लिए (वा) अथवा) (परट्ठा) दूसरो के लिए (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा मान माया लोभ से (जइवा) अथवा (भया) भय से (हिंसग) पर पीडाकारी जिससे दूसरो को दुख पहुचे ऐसा (मुस) झूंठ (न वूया) स्वयं न वोले (नो वि) और न (अन्न) दूसरो से (वयावए) वोलावे तथा झूंठ वोलने वालो का अनुमोदन भी न करे ॥१२॥

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोस विवज्जए । १३॥

अन्वयार्थः— (लोगम्मि) ससार मे (सव्वसाहूहिं)

सब महापुरुषों ने (मुसावाओ) असत्य भाषण को (गरिहिओ) निन्दित बतलाया है (य) क्योकि असत्य भाषण (भूयाणं) सब प्राणियो के लिए (अविस्सासो) अविश्वसनीय है अर्थात् असत्यवादी का कोई विश्वास नही करता (तम्हा) इसलिए (मोस) मृषावाद का (विवज्जए) सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥

चित्तमतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दतसोहणमित्त पि, उग्गहं सि अजाइया ॥१४॥

त अप्पणा न गिण्हति, नो वि गिण्हावए पर ।
अन्न वा गिण्हमाण पि, नाणुजाणति सजया ॥१५॥

अन्वयार्थ.—(चित्तमत) सचेतन-शिष्यादिक हो (वा) अथवा (अचित्त) अचेतन वस्त्र पात्रादिक हो (बहु) बहुमूल्य पदार्थ हो (जइ वा) अथवा (अप्प) अल्प मूल्य वाला पदार्थ हो यहाँ तक कि (दतसोहणमित्त पि) दात कुरेदने का तिनका भी हो (सजया) साधु (सि-से) उस वस्तु के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) मागे बिना (त) उस पदार्थ को (अप्पणा) आप स्वय (न गिण्हति) ग्रहण नही करते (नो वि) और न (पर) दूसरो से (गिण्हावए) ग्रहण करवाते हैं (वा) और (गिण्हमाण पि) ग्रहण करते हुए (अन्न) दूसरो को (नाणुजाणंति) भला भी नही समझते ॥१४-१५॥

अबभचरिय घोर, पमाय दुरहिट्ठियं ।
नायरति मुणी लोए, भेयाययण वज्जिणो ॥१६॥

अन्वयार्थः— (लोए) लोक मे (भेयाययण वज्जिणो)

चारित्र का भग करने वाले स्थानो को वर्जने वाले पाप-भीरु (मुणी) मुनि (घोर) नरकादि दुर्गतियो मे डालने वाला अतएव भयकर (पमाय) प्रमाद को पैदा करने वाला (दुरहिट्ठियं) परिणाम मे दुःखदायी (अबभचरिय) अब्रह्मचर्य का (नारयति कदापि सेवन नही करते ॥१६॥

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सय ।
तम्हा मेहुण ससग्ग, निग्गथा वज्जयति ण ॥१७॥

अन्वयार्थः—(एय) यह अब्रह्मचर्य (अहम्मस्स) अधर्म का (मूल) मूल है और (महादोससमुस्सय) महादोषो का समूह है (तम्हा) इसीलिए (निग्गथा) निर्ग्रन्थ साधु (मेहुण ससग्ग) मैथुन के ससर्ग को (ण) सर्वथा प्रकार से (वज्ज-यति) छोडते हैं ॥१७॥

विडसुब्भेइमं लोण तिल्ल सप्पि च फाणिय ।
न ते सनिहिमिच्छति, णायपुत्तवओरया ॥१८॥

अन्वयार्थः— (णायपुत्तवओरया) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो मे जो रत रहते हैं (ते) वे मुनि (विड-विडं) विड लवण (उब्भेइम) सामुद्रिक (लोण) लवण (तिल्लं) तेल (सप्पि) घी (च) और (फ़ाणिय) गीला गुड आदि पदार्थो का (सनिहिं) संग्रह करना-रात्रि मे वासी रखना (न इच्छति) नही चाहते ॥१८॥

भावार्थः— भगवान् की आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले मुनि अशनादि किसी पदार्थ का सग्रह करना तो दूर रहा किन्तु सग्रह करने की इच्छा तक नही करते ।

हस्सेस अणुप्फासे, मन्ने अन्नयरामवि ।
सिया सन्निहि कामे, गिही पव्वइए न से ॥१९।

न्वयार्थः— (एस) यह सन्निधि-सग्रह (लोहस्स) (अणुप्फामे) अनुस्पर्श-प्रभाव है, अत (मन्ने) देव ऐसा मानते हैं अथवा तीर्थंकर और गणधरों कहा है कि (सिया) यदि कदाचित् किसी भी समय ा साधु (अन्नयरामवि) किंचिन्मात्र भी (सन्निहिं) रना तो दूर रहा किन्तु संग्रह करने की (कामे) रता है तो (से) वह (न पव्वइए) साधु नही गिही) गृहस्थ है ॥१९॥

ज पि वत्थ व पाय वा, कबल पायपुछण ।
त पि सजम लज्जट्ठा, धारति परिहरति य ॥२०॥

अन्वयार्थः—यदि कोई यह शका करे कि साधु वस्त्र ादि वस्तुए अपने पास रखते हैं तो क्या ये वस्तुएँ या परिग्रह नही हैं ? इसका समाधान किया जाता (ज पि) साधु लोग जो (वत्थ) वस्त्र (व) अथवा) पात्र (कबल) कम्बल (वा) अथवा (पायपुछण) रण आदि शास्त्रोक्त सयम के उपकरण (धारति) ा करते हैं (य) और (परिहरति) अनासक्ति भाव से ा उपभोग करते हैं (तपि) वह (सजमलज्जट्ठा) केवल की रक्षा के लिए और लज्जा के लिए ही करते २०॥

न सो परिग्गहो वुत्तो, णायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२१॥

को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (आउकायसमारभ) अप्काय के समारभ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३२॥

जायतेय न इच्छति, पावगं जलइत्तए ।
तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासय ॥३३।

अन्वयार्थः— साधु (जायतेयं) अग्नि को (जलइत्तए) सुलगाने की (न इच्छति) कभी भी इच्छा न करे क्योंकि वह (पावग) पापकारी है और (अन्नयर सत्थ) लोह के अस्त्रशस्त्रो की अपेक्षा भी (तिक्ख) अधिक तीक्ष्ण शस्त्र है (सव्वओ वि दुरासय) उसे सह लेना अत्यन्त दुष्कर है ।३३।

पाईणं पडिण वावि, उड्ढ अणुदिसामवि ।
अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओ वि य ॥३४॥

अन्वयार्थः— (पाईणं) पूर्व (वावि) और (पडिण) पश्चिम (दाहिणओ) दक्षिण (वावि) और (उत्तरओ वि) उत्तर दिशा मे (य) तथा (अणुदिसामवि) चारो विदिशाओ में (उड्ढ) ऊँची और (अहे) नीची दिशा मे अर्थात् दस दिशाओ मे रहे हुए जीवों को (दहे) यह अग्नि जला कर भस्म कर देती है ॥३४॥

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न ससओ ।
त पईवपयावट्ठा, संजया किंचि नारभे ॥३५॥

अन्वयार्थः—(एस) यह (हव्ववाहो) अग्नि (भूयाणं) प्राणियों का (आघाओ) आघात स्वरूप है अर्थात् प्राणियो की घात करने वाली है (न ससओ) इसमे कुछ भी सदेह नही है । इसलिए (सजया) सयमी मुनि (तं) उस अग्नि

का (पईवपयावट्ठा) प्रकाश के लिए तथा शीत निवारण आदि कार्यों के लिए (किंचि) किंचिन्मात्र भी (नारभे) आरम्भ नही करे ॥३५॥

> तम्हा एय वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
> तेउकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ।३६॥

अन्वयार्थः— (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तेउकाय-समारभ) अग्निकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) जीवनपर्यन्त (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३६॥

> अणिलस्स समारभ, वुद्धा मन्नति तारिस ।
> सावज्ज बहुल चेय, नेय ताईहिं सेविय ॥३७॥

अन्वयार्थ.— (बुद्धा) तीर्थंकर भगवान् (अणिलस्स) वायुकाय के (समारभ) आरम्भ को (तारिस) उसी प्रकार का अर्थात् अग्निकाय के आरम्भ जैसा (सावज्जबहुल) अत्यन्त पापकारी (मन्नति) मानते हैं-केवलज्ञान द्वारा जानते हैं एय च) इस कारण से (ताईहिं) छकाय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) वायुकाय का समारम्भ (न सेविय) कदापि न करना चाहिए ।३७॥

> तालियंटेण पत्तेण, साहाविहुयणेण वा ।
> न ते वीइउमिच्छति, वीयावेऊण वा पर ॥३८॥

अन्वयार्थः— (ते) वे छकाय जीवो के रक्षक मुनि (तालियटेण) ताल के पखे से (पत्तेण) पत्ते से (वा) अथवा

(साहाविहुयणेण) वृक्ष की शाखा को हिलाकर (वीइउ) अपने ऊपर हवा करना (न) नही (इच्छति) चाहते (वा) और न (पर) दूसरे से (वीयावेऊण) हवा करवाना चाहते है तथा हवा करने वालो की अनुमोदना भी नही करते।३८।

जं पि वत्थं व पाय वा, कवल पायपुछण ।
न ते वायमुईरति, जयं परिहरति य ॥३९॥

अन्वयार्थः— (ज पि) जो (वत्थ) वस्त्र (व) और (पाय) पात्र (कंबल) कवल (वा) अथवा (पायपु छणं) रजोहरण आदि सयमोपकरण साधु के पास हैं उनसे भी (ते) वे (वाय) वायु को (न उईरति) उदीरणा नही करते (य) किन्तु (जय) यतनापूर्वक (परिहरति) धारण करते है जिससे वायुकाय की विराधना नही होती ॥३९॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढण ।
वायुकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥४०॥

अन्वयार्थ·— (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषों को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वायुकाय समारंभ) वायुकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४०।

वणस्सइ न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएणं, सजया मुसमाहिया ॥४१॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिवि-

हेण) तीन (जोएणं जोएण) योगों से और (करण) कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (न हिंसति) हिंसा नही करते दूसरों से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते ।४१।

वणस्सइ विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४२॥

अन्वयार्थः— (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (विहिंसंतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चक्षुओ द्वारा दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ द्वारा नही दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ।४२।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वणस्सइसमारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥४३॥

अन्वयार्थ.— (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढ़ाने वाले (एय) इन (दोसं) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वणस्सइसमारभ) वनस्पतिकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४३॥

तसकाय न हिंसति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करण जोएण, सजया सुसमाहिया ।४४॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवंत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप

(तिविहेण) तीन (जोएणं-जोएण) योगों से और (करण) तीन करण से (तसकाय) त्रसकाय की (न हिंसति) हिंसा नहीं करते, दूसरो से नहीं करवाते और करने वालो को अनुमोदना भी नहीं करते ।४४।।

तसकायं विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ।।४५।।

अन्वयार्थः— (तसकाय) त्रसकाय को (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) नाना प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ।४५।

तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइवड्ढण ।
तसकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ।।४६।।

अन्वयार्थः - (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को वढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तसकाय समारभ) त्रसकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ।।४६।।

जाइ चत्तारिऽभुज्जाइ, इसिणाऽऽहारमाइणि ।
ताइ तु विवज्जतो सजम अणुपालए ।।४७।।

अन्वयार्थ — (जाइ) जो (आहारमाइणि) आहार, शय्या, वस्त्र प.आदि (चत्तारि) चार पदार्थ (इसिणा) मुनियों के लिए (अभुज्जाइ-अभोज्जाइ) अकल्पनीय हैं (ताइ)

उनको (तु) निश्चय पूर्वक (विवज्जतो) त्यागता हुआ साधु (संजमं) संयम का (अणुपालए) यथाविधि पालन करे।४७।

पिंडं सिज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥४८॥

अन्वयार्थः— (पिंडं) आहार (च) और (सिज्जं) शय्या (च) तथा (वत्थं) वस्त्र (य) और (चउत्थं) चौथा (पायमेव) पात्र ये यदि (अकप्पियं) अकल्पनीय हो तो साधु (न इच्छिज्जा) ग्रहण न करे और यदि (कप्पियं) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण कर सकता है ॥४८॥

जे नियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाहडं ।
वहं ते समणुजाणंति इइ वुत्तं महेसिणा ॥४९॥

अन्वयार्थः—(नियागं) आमंत्रित पिण्ड (कीयं) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसियं) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये हुए और (अ हडं) साधु के निमित्त उसके सामने लाये हुए आहारादि को (जे) जो साधु (ममायंति) ग्रहण करते हैं (ते) वे (वहं) प्राणिवध-हिंसा की (समणुजाणंति) अनुमोदना करते हैं (इइ-इय) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर ने (वुत्त-उत्त) कहा है ॥४९॥

तम्हा असणपाणाइं, कीयमुद्देसियाहडं ।
वज्जयंति ठिअप्पाणो, निग्गंथा धम्मजीविणो ॥५०॥

अन्वयार्थ— (तम्हा) इसलिए (ठिअप्पाणो) संयम मे स्थिर आत्मा वाले (धम्मजीविणो) धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले (निग्गंथा) निर्ग्रन्थ मुनि (कीयं) साधु के वास्ते मोल लिए हुए (उद्देसियं) औद्देशिक-साधु के निमित्त बनाये

हुए और (आहड) साधु के निमित्त सन्मुख लाये हुए (असण-पाणाइ) आहार पानी आदि को (वज्जयति) ग्रहण नही करते ॥५०॥

कसेसु कसपाएसु, कुडमोएसु वा पुणो ।
भुजतो असणपाणइ, आयारा परिभस्सइ ॥५१॥

अन्वयार्थः – जो साधु (कसेसु) गृहस्थ की कासी आदि का कटोरो मे (वा) अथवा (कसपाएसु) कासी आदि के थाल मे (पुणो) और (कुडमोएसु) मिट्टी के वर तन मे (असण पाणाइ) आहार पानी (भुजतो) भोगता है वह (आयारा) चारित्र धर्म से (परिभस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है ॥५१॥

सीओदगसमारभे, मत्तधोअणछड्डणे ।
जाइ छनति भूयाइ, दिट्ठो तत्थ असजमो ॥५२॥

अन्वयार्थः— जब साधु गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने लग जायगा तो (सीओदगसमारभे) सचित्त जल का आरम्भ होगा—अर्थात् गृहस्थ उस वतन को कच्चे जल से धोवेगा उसमे अप्काय की हिसा होगी और (मत्तधोअण-छड्डणे) वर्तनो को धोये हुए पानी को अयतनापूर्वक इधर उधर गिराने मे (जाइ भूयाइ) वहुत से जीवो की (छनति-णणंति-छिप्पति) हिसा होगी अत (तत्थ) गृहस्थ के वर्तन में भोजन करने में तीर्थङ्कर देव ने केवलज्ञान द्वारा (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है ॥५२॥

पच्छाकम्म पुरेकम्म, सिया तत्थ न कप्पइ ।
एयमट्ठ न भुजति, निग्गथा गिहिभायणे ॥५३।

अन्वयार्थः—(तत्थ) गृहस्थ के बर्तन में भोजन करने से (पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म और (पुरेकम्म) पुरःकर्म दोष (सिया) लगने की सभावना रहती है अत साधु को यह (न कप्पइ) नही कल्पता है (एयमट्ठं) इसलिए (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (गिहीभायणे) गृहस्थ के वर्तन मे (न भु जति) भोजन नही करते हैं ॥५३॥

आसंदी पलिअकेसु मचमासालएसु वा ।
अणायरियमज्जाणं आसइत्तु सइत्तु वा ॥५४॥

नासदी पलिअंकेसु, न निसिज्जा न पीढए ।
निग्गंथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्तमहिट्ठगा ॥५५॥

अन्वयार्थः—(आसदी पलिअ केसु) बेत आदि की कुर्सी और पलग पर (वा) अथवा (मचमासालएसु) खाट और आराम कुर्सी आदि पर (आसइत्तु) बैठना (वा) अथवा (सइत्तु) सोना (अज्जाणं) साधुओ के लिए (अणायरिय) अनाचार रूप है इसलिए (बुद्धवुत्तमहिट्ठगा) तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले (निग्गंथा) निर्ग्रन्थ मुनियों को चाहिये कि वे (न) न तो (आसदी पलिअकेसु) बेंत आदि की कुर्सी और पलग पर बैठे और सोवे और (न) न (निसिज्जा-निसेज्जा) रूई की गद्दी सहित आसन पर और (न) न (पीढए) बेंत के बने हुए आसन विशेष पर बैठे और सोवे क्योकि (अपडिलेहाए) इनकी पडिलेहणा होना कठिन है ॥५४-५५॥

गंभीर विजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ।
आसदी पलिअंको य, एयमट्ठं विवज्जिया ॥५६॥

अन्वयार्थ— (एए) कुर्सी पलंग आदि इन सब मे (गभीर विजया) उडे छिद्र होते हैं अत. (पाणा) बेइन्द्रियादि प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) पडिलेहणा होना कठिन है (एयमट्ठ) अत मुनियो को (आसदी) कुर्सी (य) और (पलिअ को) पलग आदि का (विवज्जिया) त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन आसनो पर सोना-बैठना न चाहिए।५६।

गोयरग्ग पविट्ठस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ।
इमेरिसमणायारं, आवज्जइ अबोहिय ॥५७॥

अन्वयार्थः— (गोयरग्ग पविट्ठस्स) गोचरी गया हुआ (जस्स) जो साधु (निसिज्जा कप्पइ) गृहस्थ के घर पर बैठता है उसे (इमेरिस) अगली गाथा मे कहे जाने वाला (अणायार) अनाचार दोष लगने की सभावना रहती है तथा (अबोहिय) मिथ्यात्व की (आवज्जइ) प्राप्ति होती है । ५७॥

विवत्ती बभचेरस्स, पाणाणं च वहे वहो ।
वणीमगपडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिण ॥५८।

अन्वयार्थः— गृहस्थ के घर बैठने से साधु के (बंभचेरस्स) ब्रह्मचर्य के (विवत्ती) नाश होने की तथा (पाणाण) प्राणियो का (वहे) वध होने से (वहो) संयम दूषित होने की संभावना रहती है (वणीमगपडिग्घाओ) तथा उसी समय यदि कोई भिखारी भिक्षा के लिए आवे तो उसकी भिक्षा मे अन्तराय होने की सभावना रहती है (च) और साधु के चारित्र पर सदेह होने से (अगारिण) गृहस्थ (पडिकोहो) कुपित हो सकता है ।५८॥

अगुत्ती वभचेरस्स, इत्थीओ वावि संकण ।
कुसोलवड्ढण ठाण, दूरओ परिवज्जए ॥५९॥

अन्वयार्थः— गृहस्थ के घर बैठने से (बभचेरस्स) स घु के ब्रह्मचर्य की (अगुत्ती) गुप्ति-रक्षा नही हो सकती (वावि) और (इत्थीओ) स्त्रियो के विशेष ससर्ग से (सकण) ब्रह्मचर्यव्रत मे शका उत्पन्न हो सकती है । इसलिए (कुसी-लवड्ढण) कुशील को बढाने वाले (ठाण) इस स्थान को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्ज दे ॥५९॥

तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ।
जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो ॥६०॥

अन्वयार्थः— (जराए अभिभूयस्स) जराग्रस्त-बुड्ढा (वाहियस्स) रोगी और (तवस्सिणो) तपस्वी (तिण्ह) इन तीन मे से (अन्नयरागस्स जस्स) किसी भी साधु को कारणवश (निसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना (कप्पई) कल्पता है अर्थात् शारीरिक निर्बलतादि के कारण यदि ये गृहस्थ के घर बैठे तो पूर्वोक्त दोषो की सभावना नही है ॥६०॥

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाण जो उ पत्थए ।
वुवकतो होइ आयारो, जढो हवइ सजमो ॥६१॥

अन्वयार्थः— (वा) चाहे (वाहिओ) रोगी हो (वा) अथवा (अरोगी) निरोग हो किन्तु (जो) जो साधु (सिणाण) स्नान करने की (पत्थए) इच्छा करता है (उ) तो निश्चय ही (आयारो) वह आचार से (वुक्कतो) भ्रष्ट (होइ) हो ज ता है और (सजमो) उसका सयम (जढो) मलिन (हवइ) हो जाता है ॥६१॥

सतिमे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासु य ।
जे य भिक्खू सिणायतो, वियडेंणुप्पलावए ॥६२॥

अन्वयार्थः— (घसासु) खारवाली, पोली भूमि में (य) और (भिलगासु-भिलुगासु) फटी हुई दराडों वाली भूमि मे (सुहुमा) सूक्ष्म (पाणा) प्राणी (संति) होते हैं अत यदि (भिक्खू) साधु (वियढेण) गरम जल से भी (सिणायतो) स्नान करेगा तो (इमे) उन सूक्ष्म जीवो की (उप्पलावए-उप्पिलावए) हिंसा हुए बिना न रहेगी ॥६२॥

तम्हा ते न सिणायति, सीएण उसिसेण वा ।
जावज्जीव वय घोर, असिणाणमहिट्ठगा ॥६३॥

अन्वयार्थः— (तम्हा) इसलिए (ते) शुद्ध सयम का पालन करने वाले साधु (सीएण) ठडे जल से (वा। अथवा (उसिसेण) गरम जल से (न सिणायति) कभी भी स्नान नही करते किन्तु वे (जावज्जीव) जीवन पर्यन्त (असिणाण) अस्नान नामक (घोर) कठिन (वय) व्रत का (अहिट्ठगा) पालन करते हैं ।६३॥

सिणाण अदुवा कक्क, लुद्ध पउमगाणि य ।
गायस्सुव्वट्टणट्ठाए, नायरति कयाइ वि ॥६४॥

अन्वयार्थः— सयमी पुरुष (सिणाण) स्नान (अदुवा) अथवा (कक्क) कल्क-चन्दनादि सुगन्धी द्रव्य (लुद्ध) लोद (य) और (पउमगाणि) कु कुम केसर आदि सुगधित द्रव्यो का (गायस्सुव्वट्टणट्ठाए) अपने शरीर के उवटन-मर्दन के लिए (कयाइ वि) कदापि (नायरति) सेवन नही करते ।६४।

नगिणस्स वावि मु डस्स, दीहरोम नहसिणो ।
मेहुणा उवसंतस्स, किं विभूसाइ कारिय ॥६५॥

अन्वयार्थः—(नगिणस्स) प्रमाणोपेत वस्त्र रखने वाला स्थविर कल्पी अथवा नग्न रहने वाला जिनकल्पी (मुडस्स) द्रव्य और भाव से मुण्डित (दीहरोम नहसिणो) और जिसके नख और केश बढे हुए हैं ऐसे (वावि) तथा (मेहुणा-मेहुणाओ) विपय वासना से (उवसतस्स) सर्वथा उपशांत साधु को (विभूसाइ-विभूसाए) शरीर की शोभा एव शृङ्गार से (किं) क्या (कारिय) प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है ॥६५॥

विभूसा वत्तियं भिक्खू, कम्म बधइ चिक्कण ।
ससारसायरे घोरे, जेण पडइ दुरुत्तरे ॥६६॥

अन्वयार्थः— (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा एव शोभा शृङ्गार करने से (भिक्खू) साधु को (चिक्कण) ऐसे चीकने (कम्म) कर्मों का (बधइ) बध होता है (जेण) जिससे वह (घोरे) जन्म जरामरण के भय से भयकर (दुरुत्तरे) मुश्किल से पार किये जाने वाले (ससारसायरे) संसाररूपी सागर मे (पडइ) गिर पड़ता है ॥६६॥

विभूसावत्तिय चेय, बुद्धा मन्नति तारिस ।
सावज्जबहुल चेय, नेय ताईहिं सेविय ॥६७॥

अन्वयार्थः— (बुद्धा) ज्ञानी पुरुष (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूषा संवधी सकल्प-विकल्प करने वाले (चेयं) मन को (तारिस) चीकने कर्मबध का कारण (च) और (सावज्जबहुल) बहुत पापो के उत्पत्ति का हेतु (मन्नति) मानते हैं (एय) इसलिए (ताईहिं) छ काय जीवों के रक्षक मुनियो को (एय) शरीर की विभूषा का (न सेवियं) चिन्तन भी न करना चाहिए ।६७।

खवति अप्पाणममोहदसिणो, तवे रया सजम अज्जवे गुणे ।
धुणति पावाइ पुरेकडाइ, नवाइ पावाइ न ते करंति ।।६८।।

अन्वयार्थ — (अमोहदसिणो) मोह रहित तथा तत्त्व के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता (सजम) सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाले (अज्जवे गुणे) आर्जवता आदि गुणो से सयुक्त तथा (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रया) रत रहने वाले (ते) पूर्वोक्त अठारह स्थानो का यथावत् पालन करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि (पुरेकडाइ) पहले किए हुए (पावाइ) पाप कर्मों को (धुणति) क्षय कर देते हैं और (नवाइ) नवीन (पावाइ) पापकर्मों का (न करति) बध नही करते–इस प्रकार वे मुनि (अप्पाण) अपनी आत्मा मे रहे हुए कषायादि मल को (खवति) सर्वथा क्षय कर डालते है ।।६८।।

सओवसता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जससिणो ।
उउप्पसन्ने विमलेव चदिमा, सिद्धि विमाणाइ उवेति ताइणो ।।

अन्वयार्थः— (सओवसता) सदा उपशात (अममा) मोह ममता रहित (अकिंचणा) निष्परिग्रही (सविज्ज-विज्जाणुगया) आध्यात्मिक विद्या का अनुसरण करने वाले (जससिणो) यशस्वी तथा (उउप्पसन्ने) शरद ऋतु के स्वच्छ (चदिमा) चन्द्रमा के (इव) समान (विमला) निर्मल मुनि (सिद्धि) कर्मों का सर्वथा क्षय करके सिद्धगति को (उवेंति-उवति) प्राप्त होते हैं अथवा कुछ कर्म बाकी रहने पर (विमाणाइ) वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते हैं ।।६९।। (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

'सुवाक्यशुद्धि' नामक सातवां अध्ययन

इस अध्ययन में भाषाशुद्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है--

चउण्ह खलु भासाण, परिसखाय पन्नव ।
दुण्ह तु विणय सिक्खे, दो न भासिज्जा सव्वसो ॥१।

अन्वयार्थः—(पन्नवं) बुद्धिमान् साधु (चउण्ह) सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार इन चार (भासाण) भाषाओ के स्वरूप को (खलु) भली प्रकार (परिसखाय) जानकर (दुण्ह) सत्य और व्यवहार इन दो भाषाओ का (विणय) विवेकपूर्वक उपयोग करना (सिक्खे) सीखे (तु) और (दो) असत्य और मिश्र इन दो भाषाओ को (सव्वसो) सब प्रकार से (न भासिज्ज) न बोले ॥१॥

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा ।
जा य बुद्धेहिं नाइन्ना, न त भासिज्जा पन्नव ॥२॥

अन्वयार्थः— (जा य) जो भाषा (सच्चा) सत्य है किन्तु (अवत्तव्वा) अप्रिय और अहितकारी होने से बोलने योग्य नही है (य) और (जा) जो भाषा (सच्चामोसा) सत्यामृषा-मिश्र है (य) तथा (जा) जो भाषा (मुसा) मृषा है (त) इन भाषाओं को (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) न बोले क्योंकि (बुद्धेहिं) तीर्थंकर देवो ने

(नाइन्ना) इन भाषाओं को बोलने की आज्ञा नहीं दी है ॥२॥

असच्चमोस सच्च च, अणवज्जमकक्कस ।
समुप्पेहमसदिद्ध, गिर भासिज्ज पन्नव ॥३॥

अन्वयार्थः – (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (अणवज्ज) निर्वद्य-पाप रहित (अकक्कस) कर्कशता रहित मधुर (च) और (असदिद्ध) सन्देह रहित स्पष्ट (असच्चमोस) असत्या-मृषा-व्यवहार भाषा और (सच्च) सत्य (गिर) भाषा को (समुप्पेह) अच्छी तरह विचार कर विवेकपूर्वक (भासिज्ज) बोले ॥३॥

एय च अट्ठमन्न वा, ज तु नामेइ सासय ।
स भास सच्चमोस पि, तपि धीरो विवज्जए ॥४॥

अन्वयार्थः— (एय च) सावद्य और कर्कशता युक्त (अट्ठ) अर्थ को (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार के दूसरे अर्थ को प्रतिपादन करने वाली (ज तु) जो भाषा (सासय) शाश्वतसुख की (नामेइ) विघातक है अर्थात् जिस भाषा के बोलने से मोक्षप्राप्ति मे बाधा पहुचती है. चाहे वह (सच्चमोस भास) सत्यामृषा-मिश्र भाषा हो अथवा (अपि-च) सत्य भाषा हो (त पि) उसे (स) सत्यव्रतधारी (धीरो) बुद्धिमान् साधु (विवज्जए) वर्ज दे अर्थात् ऐसी भाषा न बोले ॥४॥

वितह पि तहामुत्ति, ज गिर भासए नरो ।
तम्हा सो पुट्ठो पावेण, कि पुण जो मुस वए ॥५॥

अन्वयार्थः—(नरो) जो मनुष्य (तहामुत्ति पि) बाह्य वेश के अनुसार अर्थात् स्त्री वेषधारी पुरुष को स्त्री एव

पुरुषवेश वाली स्त्री को पुरुष कहने रूप (जं) जिस (वितह) असत्य (गिर) भाषा को (भासए) बोलता है (तम्हा) इससे (सो) वह पुरुष (पावेणं) पाप से (पुट्ठो) स्पष्ट होता है अर्थात् पाप का भागी होता है तो (पुण) फिर (जो) जो व्यक्ति (मुस) साक्षात् झूठ (वए) बोलता है उसका तो (किं) कहना ही क्या ? अर्थात् उसके तो पापकर्म का बंध अवश्य होता है ॥५॥

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ॥६॥

एवमाइ उ जा भासा, एसकालम्मि संकिया।
संपयाइअमट्ठे वा, तंपि धीरो विवज्जए ।७।

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (गच्छामो) कल हम यहां से अवश्य चले जावेंगे (वक्खामो) अमुक बात हम उनको अवश्य कह देंगे या कल हम यहाँ पर अवश्य व्याख्यान देंगे (वा) अथवा (णे) हमारा (अमुगं) अमुक कार्य (भविस्सइ) अवश्य हो जायगा (वा) अथवा (अहं) मैं (णं) उस कार्य को (करिस्सामि) अवश्य कर दूंगा (वा) अथवा (एसो) यह व्यक्ति (णं) उस कार्य को (करिस्सइ) अवश्य कर देगा। (एवमाइ) इस प्रकार की (जाउ) जो (भासा) भाषा (एसकालम्मि) भविष्यत काल में (संकिया) संशय युक्त हो (वा) अथवा (संपयाइअमट्ठे) इसी प्रकार की जो भाषा वर्तमान और अतीतकाल के विषय में संशय युक्त हो (तंपि) उसे (धीरो) धैर्यवान् साधु (विवज्जए) वर्जे—अर्थात् साधु निश्चयकारी भाषा न बोले ॥६-७॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेयंति नो वए ।।८।

अन्वयार्थः - (अईयम्मि) अतीतकाल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल सम्बन्धी (ज) जिस (अट्ठ) अर्थ को- वस्तु को (न जाणिज्जा) अच्छी तरह न जानता हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेयति) यह वस्तु ऐसी ही है इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले । ८।।

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
जत्थ सका भवे त तु एवमेयं ति नो वए ।।६।

अन्वयार्थः (अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्ण) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल मे (जत्थ) जिस वस्तु के विषय मे (सका) सशय (भवे) हो (तु) तो (त) उस वस्तु के विषय मे (एवमेय) यह ऐसा ही है (ति-तु) इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले ।।६।।

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
निस्सङ्किय भवे ज तु, एवमेय ति निद्दिसे ।।१०।।

अन्वयार्थः—(अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्णं) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल मे (ज) जो वस्तु (निस्सकिय) शका रहित (भवे) हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेय) यह ऐसा है (ति) इस प्रकार साधु (निद्दिसे) निरवद्य भाषा मे भाषण कर सकता है ।।१०।।

तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ।११।

अन्वयार्थः—(तहेव) शंकित भाषा की तरह (फरुसा) कठोर (भासा) भाषा भी (गुरुभूओवघाइणी) बहुत प्राणियों के प्राणो का नाश करने वाली होती है अत (सा) इस प्रकार की भाषा (सच्चा वि) सत्य हो तो भी साधु को (न) न (वत्तव्वा) बोलनी चाहिए (जओ) क्योंकि इससे (पावस्स) पापकर्म का (आगमो) बन्ध होता है ।।११।।

तहेव काणं काणत्ति, पडग पडगत्ति वा ।
वाहियं वावि रोगित्ति तेणं चोरत्ति नो वए ।।१२।।

अन्वयार्थ— (तहेव) इसी प्रकार (काणं) काणे को (काणत्ति) काणा (वा) अथवा (पडग) नपुसक को (पडगत्ति) नपुसक (वावि) तथा (वाहिय) रोगी को (रोगित्ति) रोगी और (तेण) चोर को (चोरत्ति-चोरेत्ति) चोर (नो) न (वए) कहे अर्थात् दूसरो को दुःख पहुंचाने वाली सत्य भाषा भी साधु को न बोलनी चाहिए ।।१२।

एएणऽन्नेण अट्ठेणं, परो जेणुवहम्मइ ।
आयारभाव दोसन्नू, न त भासिज्ज पन्नव ।।१३।।

अन्वयार्थ -(आयारभाव दोसन्नू) आचार एवं भाव के दोषों को जानने वाला (पन्नवं) विवेकी साधु (एएण) उपरोक्त (अट्ठेण) अर्थ को वतलाने वाली अथवा (अन्नेण) अन्य किसी दूसरे प्रकार की भाषा (जेण) जिससे (परो) दूसरे प्राणी को (उवहम्मइ) पीड़ा पहुचे (त) ऐसी पर-पीडाकारी भाषा (न भासिज्ज) न बोले ।१३।

तहेव होले गोलित्ति, साणे वा वसुलित्ति य ।
दमए दुहए वावि, नेव भासिज्ज पन्नव ॥१४।

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (होले) रे मूर्ख ! (गोलित्ति) रे लंपट (वा) तथा (साणे) रे कुत्ते ! (य) और (वसुलित्ति) रे दुराचारिन् ! (वावि) अथवा (दमए) रे कगाल ! (दुहए) रे अभागे ! इत्यादि (नेव भासिज्ज) कठोर शब्दो का प्रयोग कदापि न करे ॥१४॥

अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउसियत्ति य ।
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति, धूए णत्तुणिअ त्ति य ॥१५॥

हले हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि ।
होले गोले वसुलित्ति, इत्थिअ नेवमालवे ॥१६॥

अन्वयार्थः— (अज्जिए) हे दादी ! या हे नानी ! (वावि) अथवा (पज्जिए) हे परदादी ! या हे परनानी ! (अम्मो) हे माँ ! (य) और (माउसियत्ति) हे मौसी ! (पिउस्सिए) हे भूवा ! (भायणिज्ज त्ति) हे भानजी ! (धूए) हे पुत्री ! (य) और (णत्तुणिअत्ति) हे दोहिती ! या हे पोती ! (हले हलित्ति) हे सखी ! (अन्नित्ति) हे अन्ने ! (भट्टे) हे भट्टे ! (सामिणी) हे स्वामिनि ! (गोमिणि) हे गोमिनि-गवालिन् (होले) हे मूर्ख ! (गोले) हे गोली ! (वसुलित्ति) हे दुराचारिणि ! (एव) इत्यादि निन्दित सबोधनो से सबोधित करके (इत्थिअ) किसी भी स्त्री को साधु (न आलवे) न बोलावे ॥१५-१६।

णामधिज्जेण ण बूआ, इत्थीगुत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥१७॥

अन्वयार्थः— (णं) उस स्त्री का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (इत्थीगुत्तेण) उस स्त्री का जो गोत्र हो उस गोत्र से सबोधित करके (बूआ) बोले तथा (जहारिहं) यथायोग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके (आलविज्ज) एक बार बोले (वा) अथवा (लविज्ज) बार-बार बोले ।१७।

अज्जए पज्जए वावि, बप्पो चुल्लपिउत्ति य ।
माउलो भाइणिज्ज त्ति, पुत्ते णतुणिअ त्ति य ॥१८॥

हे भो हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिअ गोमिअ ।
होल गोल वसुलि घि, पुरिस नेवमालवे ॥१९॥

अन्वयार्थः— (अज्जए) हे दादा या हे नाना ! (वावि) अथवा (पज्जए) हे परदादा या हे परनाना ! (बप्पो) हे पिता ! (य) और (चुल्लपिउ त्ति) हे चाचा ! (माउलो) हे मामा ! (भाइणिज्जत्ति) हे भानजे ! (पुत्तो) हे पुत्र ! (य) और (णत्तुणिअ त्ति) हे दोहिता ! हे पोता ! (हे हलित्ति) रे सखे ! (भो अन्नित्ति) रे अन्न ! (भट्टे-भट्टा) रे भट्ट (सामिअ) हे स्वामिन् ! (गोमिय) रे गोमिन् गाय वाले (होल) रे मूर्ख ! (गोल) रे लपट ! (वसुलित्ति) रे दुराचारिन् (एव) इत्यादि निन्दित एवं अपमानजनक सम्बोधनो से (पुरिस) किसी भी पुरुष को सम्बोधित न करे ॥१८-१९॥

णामधिज्जेण णं बूआ, पुरिसगुत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥२०॥

अन्वयार्थः—(ण) उस पुरुष का (णामधिज्जेण) जो

प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (पुरिस-गुत्तेण) उस पुरुष का जो गोत्र हो उस गोत्र से सम्बोधित कर (बूआ) बोले (वा) अथवा (जहारिहं) यथायोग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके (आलविज्ज) एक बार बोले अथवा आवश्यतानुसार (लविज्ज) बार-बार बोले ॥२०॥

पंचिदिआण पाणाणं एस इत्थी अयं पुमं ।
जाव ण न विज्जाणिज्जा, ताव जाइ त्ति आलवे ॥२१॥

अन्वयार्थः—(पंचिदिआण) पचेन्द्रिय (पाणाण) प्राणी गाय, भैंस, घोडा आदि के विषय मे (जाव) जब तक (एस) यह (इत्थी) गाय, भैंस, घोडी आदि है अथवा (अयं) यह (पुमं) बैल भैंस, घोडा आदि है (ण) इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग आदि का ठीक-ठीक रूप से (न विज्जाणिज्जा) निश्चय न हो जाय (ताव) तब तक (जाइ) यह गोजाति है, अश्वजाति है (त्ति) इस प्रकार (आलवे) साधु बोले ॥२१॥

तहेव माणुसं पसुं, पक्खि वावि सरीसवं ।
थूले पमेइले वज्झे, पायमित्ति य नो वए ॥२२॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (माणुस) मनुष्य (पसु) पशु (पक्खि) पक्षी (वावि) अथवा (सरीसव) सर्प आदि को देखकर (थूले) यह बडा मोटा-ताजा है (पमे-इले) यह बड़ी तोंद वाला है इसके शरीर में चर्बी बहुत बढी हुई है (वज्झे) यह शस्त्र द्वारा मार देने योग्य है (य) अथवा (पाय) अग्नि मे पकाने योग्य है (इत्ति) इस प्रकार परपीड़ाकारी वचन साधु को (नो) नहीं (वए) बोलना चाहिए ॥२२॥

परिवूढत्ति णं बूआ, बूआ उवचिअ त्ति य ।
सजाए पीणिए वावि, महाकाय त्ति आलवे ॥२३॥

अन्वयार्थः— (ण) यदि स्त्री-पुरुष के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (परिवूढ परिवूड्ढे) यह सामर्थ्यवान् है अथवा यह सब प्रकार से वृद्ध है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोलना चाहिए (य) अथवा (उवचिअ-उवचिए) यह स्वस्थ एवं पुष्ट शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार (बूआ) बोलना चाहिए (वावि) अथवा (सजाए) यह पूरा अ ग-उपांग वाला है (पीणिए) यह प्रसन्न एवं निष्फिक्र है तथा (महाकाय) यह बडे शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार आवश्यकता पडने पर (आलवे) साधु बोल सकता है ॥२३ ।

तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा गोरहगत्ति य ।
वाहिमा रहजोगित्ति, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२४॥

अन्वयार्थ— (तहेव) जिस प्रकार मनुष्य आदि के विषय मे सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार पशुओ के लिए भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए यथा (गाओ) ये गायें (दुज्झाओ) दुहने योग्य हैं अर्थात् इन गायो के दूध निकालने का समय हो गया है (य) तथा (गोरहगत्ति) ये बछड़े अब (दम्मा) दमन करने योग्य है अर्थात् नाथने योग्य हैं अथवा वधिया खसी करने के लायक हैं (वाहिमा) हलादि मे जोतने योग्य हैं और (रहजोगित्ति) रथ मे जोतने योग्य हैं (एव) इस प्रकार (पन्नव) बुद्धि-मान् साधु (न भासिज्ज) सावद्य भाषा न बोले ॥२४॥

जुवं गवित्ति णं बूत्रा, घेणु रसदयत्ति य ।
रहस्से महल्लए वावि, वए सवहणित्ति य ॥२५॥

अन्वयार्थः— (णं) गाय-बैल आदि के विषय में यदि वोलने की आवश्यकता हो तो (गवित्ति) यह बैल (जुव) जवान है (य) और (घणु) यह गाय (रसदय) दूधारु है (त्ति) इस प्रकार (बूत्रा) वोले (वावि) अथवा (रहस्से) यह वछडा छोटा है (महल्लए) यह बैल वडा है (य) तथा (सवहणित्ति) यह वैल धोरी है अर्थात् उठाये हुए भार को पार पहुचाने वाला है इस प्रकार (वए) निर्वद्य वचन वोल सकता है ॥२५॥

तहेव गतुमुज्जाण पव्वयाणि वणाणि य ।
रुक्खा महल्ल पेहाए, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२६॥

अल पासायखभाण, तोरणाण गिहाण य ।
फलिहऽग्गल नावाणं, अल उदग दोणिणं ॥२७॥

अन्वयार्थः—(तहेव) जिस प्रकार पशु आदि के लिए सावद्य भाषा न वोलनी चाहिए उसी प्रकार वृक्ष आदि के विपय मे भी सावद्य भाषा न वोलनी चाहिए (उज्जाणं) वगीचे (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वन के अन्दर (गंतु) जाकर वहाँ (महल्ल) विशाल (रुक्खा) वृक्षों को (पेहाए) देखकर (पन्नव) वुद्धिमान् साधु (एवं) इस प्रकार (न भासिज्ज) न वोले कि ये वृक्ष (पासायखभाण) महल के खभो के लिए (तोरणाण तोरणाणि) नगर के दरवाजे वनाने के लिए (य) और (गिहाण-गिहाणि) झोपडी आदि वनाने के लिए (अलं) योग्य हैं तथा (फलिहऽग्गल-नावाणं) परिघ-भोगल, आगल और नाव वनाने के लिए

तथा (उदगदोणिण) जलपात्र अथवा छोटी नौका बनाने के लिये (अल) योग्य हैं ॥२६-२७।

पीढए चगबेरे य, नगले मइय सिया।
जतलट्ठी व नाभी वा, गंडिआ व अल सिया ॥२८॥

आसण सयणजाणं, हुज्जा वा किंचुवस्सए।
भूओवघाइणि भास, नेव भ सिज्ज पन्नव ॥२९॥

अ वयार्थ — ये वृक्ष (पीढए) बाजोट (चगबेरे-रा) कठौती (नगले) हल की मूठ (य) और (मइय) जोते हुए खेत को बराबर करने के लिए फिराये जाने वाले मेड़े के लिए (अल) योग्य (सिया) है (व) अथवा (जतलट्ठी) कोल्हू आदि यत्रो के लाठ (वा अथवा (नाभी) गाडी के पहिये की नाभी (व) अथवा (गंडिया) सुनार की एरण रखने का लकडी का ढाचा बनाने के लिए (अल) योग्य (सिया) हैं (आसणं) कुर्सी, पाटा अ दि बैठने का आसन (सयण) सोने के लिए बडा पाटा या खाट (वा) अथवा (जाणं) रथ एव पालकी (किंच) और (उवस्सए) उपाश्रय के किवाड आदि वनाने के खिए (हुज्जा) योग्य हैं (एव) इस प्रकार (भूओवघाइणि) एकेन्द्रियादि प्राणियों की घात करने वाली एव परपीडाकारी (भास) भाषा (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) कदापि न बोले ॥२८-२९॥

तहेव गतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, एव भासिज्ज पन्नवं ॥३०॥

जाइमता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया।
पयायसाला विडिमा, वए दरिसणित्ति य ॥३१॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (उज्जाण) उद्यान (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वनादि के अन्दर (गंतु) गया हुआ (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (महल्ल) बडे-वडे (रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देखकर यदि उनके विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (एव) इस प्रकार (भासिज्ज, वए) निरवद्य वचन कह सकता है कि (इमे) ये (रुक्खा) वृक्ष (जाइमता) उत्तम जाति के (दीहवट्टा) वहुत लवे गोलाकार (महालया) बहुत विस्तार वाले (पयायसाला) बडी वडी शाखा (य) और (विडिमा-वडिमा) प्रति शाखाओ से युक्त हैं अतएव (दरिसणित्ति) सुन्दर एव दर्शनीय हैं ॥३०-३१॥

तहा फलाइ पक्काइ, पायखज्जाइ नो वए ।
वेलोइयाइ टालाइ, वेहिमाइ त्ति नो वए ॥३२॥

अन्वयार्थः — (तहा) जिस प्रकार वृक्षो के विषय मे सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार फलो के विषय मे भी सावद्य भाषा न वोलनी चाहिए, जैसे कि (फलाइ) ये फल (पक्काइ) स्वत. पककर तैयार हो गये है तथा (पायखज्जाइ) पकाकर खाने योग्य हैं (नो वए) इस प्रकार साधु न वोले और (वेलोइयाइ) ये फल अधिक पके हुए हैं इसलिए अभी खाने योग्य हैं (टालाइ) अथवा वहुत कोमल हैं एव अभी तक इनमे गुठली भी नही पडी है इसलिए (वेहिमाइ) चाकू से काटकर दो टुकड़े करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार भी (नो वए) न वोले ॥३२॥

असथडा इमे अंवा, वहुनिव्वडिमाफला ।
वइज्ज वहुसभूआ, भूअरूवत्ति वा पुणो ॥३३॥

अन्वयार्थः— प्रयोजन पडने पर साधु (वइज्ज) इस प्रकार निरवद्य भाषा बोल सकता है कि (इमे) ये (अंबा) आम्रवृक्ष (असथडा) फलो का भार उठाने मे असमर्थ हैं अथवा इन आम्रवृक्षो मे बहुत से फल लगे हैं जिनके बोझ से झुककर ये नम्र बन गये हैं (बहुनिव्वडिमाफला) ये वृक्ष बहुत से फलो के गुच्छो से युक्त है (वा) अथवा (बहुसभूआ) इस बार बहुत अधिक फल लगे हैं (पुणो) अथवा (भूअरूवत्ति) बहुत फल लगने से ये वृक्ष बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं ॥३३॥

तहेवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइ य ।
लाइमा भज्जिमाउ त्ति, पिहुखज्ज त्ति नो वए ॥३४॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (ओसहिओ) ये शालि, गेहू आदि धान्य (पक्काओ) पक चुके हैं अतः (लाइमा) अब ये काट लेने योग्य हैं । (य) तथा (नीलियाओ छवीइ) ये चँवले आदि की फलियाँ नीली एव कोमल है अत (भज्जिमाउत्ति) कड़ाही मे डाल कर भूनने योग्य हैं अथवा (पिहुखज्ज) होला बना कर अग्नि में सेक कर खाने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार साधु (नो वए) न बोले ॥३४॥

रूढा बहुसंभूआ, थिरा ओसढा वि य ।
गब्भिआओ पसुआओ ससाराउ त्ति आलवे ॥३५॥

अन्वयार्थः— यदि धान्यादि के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो साधु (आलवे) इस प्रकार निरवद्य वचन बोल सकता है कि (रूढा) इन शालि, गेहू आदि धान्यों

भविष्यत् काल मे किये जाने वाले (सावज्ज) पापयुक्त (जोग) जोग को-कार्य को (नच्चा) जानकर (मुणी) मुनि (ति) यह कार्य अच्छा किया इस प्रकार (सावज्ज) सावद्य भाषा (न लवे) न बोले ॥४०॥

सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज, वज्जए मुणी ॥४१॥

अन्वयार्थः— (सुकडित्ति) यह प्रीतिभोज आदि कार्य अच्छा किया अथवा यह सभाभवन आदि अच्छा बनवाया (सुपक्कित्ति) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल अच्छा पकाया (सुछिन्ने) यह भयकर वन काट दिया सो अच्छा किया (सुहडे) इस कजूस का धन चोर चुरा ले गये सो अच्छा हुआ (मडे) वह दुष्ट मर गया सो अच्छा हुआ (सुनिट्ठिए) इस धनाभिमानी का धन नष्ट हो गया सो बहुत ठीक हुआ (सुलट्ठित्ति) यह कन्या हृष्ट-पुष्ट अवयव वाली नवयौवना एव सुन्दर है अत. विवाह करने योग्य हैं इस प्रकार (मुणी) मुनि (सावज्ज) सावद्य वचन (वज्जए) वर्ज दे-न बोले-किन्तु इस प्रकार निरवद्य वचन बोले कि (सुकडित्ति) इस मुनि ने वृद्ध मुनियो की वैयावच्च एव सेवा-शुश्रूषा अच्छी की (सुपक्कित्ति) इस मुनि ने ब्रह्मचर्य व्रत का अच्छा पालन किया है (सुच्छिन्ने) अमुक मुनि ने सासारिक स्नेह-बन्धनो को अच्छी तरह काट दिया है (सुहडे) यह मुनि उपसर्ग के समय मे भी ध्यान मे खूब दृढ रहा अथवा इस तत्त्वज्ञ मुनि ने उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान दूर कर दिया (मडे) अमुक मुनि को अच्छा पण्डितमरण प्राप्त हुआ (सुनिट्ठिए) अच्छा हुआ इस अप्रमादी मुनि के सर्वकर्मो का नाश हो

गया (सुलट्ठित्ति) अमुक मुनि की क्रिया बहुत सुन्दर है—
इस प्रकार साधु को निरवद्य भाषा बोलनी चाहिए ।।४१।

पयत्तपक्कत्ति व पक्कमालवे, पयत्तछिन्नत्ति व छिन्नमालवे ।
पयत्तलट्ठित्ति व कम्महेउयं, पहारगाढत्ति व गाढमालवे ।।४२।।

अन्वयार्थः— यदि कदाचित् इनके विषय मे बोलना पडे तो (पक्क) पकाये हुए शतपाक-सहस्रपाक तलादि पदार्थों के विषय मे (पयत्तपक्कत्ति-पक्कित्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूवक पकाया गया है इस प्रकार (आलवे) बोले (व) तथा (छिन्न) काटे हुए वनादि के विषय में (पयत्तछिन्नत्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूर्वक काटा गया है इस प्रकार (आलवे) बोले (व) और (पयत्तल-ट्ठित्ति) कन्या के विषय मे-यह कन्या सभालपूर्वक लालन-पालन की हुई है अथवा यदि यह कन्या दीक्षा ले तो सयम की क्रियाओ का सुन्दर रीति से पालन कर सकती है इस प्रकार बोले (व) अथवा (कम्महेउय) शृङ्गारादि क्रियाओ के विषय मे ऐसा कहे कि ये शृङ्गारादि क्रियाए कर्मबन्ध का कारण है (व) अथवा (गाढ पहारगाढत्ति) यह घाव बहुत गहरा है इस प्रकार (आलवे) निरवद्य वचन कहे ।४२।

सव्वुक्कस परग्घ वा, अउलं नत्थि एरिस ।
अविक्किअमवत्तव्व, अचियत्त चेव नो वए ।।४३।।

अन्वयार्थः— किसी गृहस्थ के साथ वार्तालाप करने का प्रसग आ जाय तो (सव्वुक्कस) यह वस्तु सबसे उत्कृष्ट है (वा) अथवा (परग्घ) अधिक मूल्य वाली है (अउल) अनुपम है (एरिसं) इसके समान दूसरी कोई वस्तु (नत्थि)

नही है (अविक्किअ) यह वस्तु अभी वेचने योग्य नही है (अवत्तव्व) इसमे इतने गुण है कि वे कहे नही जा सकते (चेव) और (अचियत्त) यह वस्तु वहुत गन्दी है (नो वए) इस प्रकार साधु न कहे ॥४३॥

सव्वमेय वइस्सामि, सव्वमेय ति नो वए ।
अणुवीइ सव्व सव्वत्य, एव भासिज्ज पन्नव ॥४४॥

अन्वयार्थः— (एयं) तुम्हारा कहा हुआ यह (सव्व) सव सन्देश (वइस्सामि) मैं उससे ठीक इसी तरह कह दूगा तथा (एय) उसका सारा कथन (एव) ऐसा ही है (ति) इस प्रकार (पन्नव) विवेकी साधु (नो वए) नही वोले किन्तु (सव्वत्थ) सव जगह (सव्व) सव वात (अणु-वीइ) वहुत सोच विचार कर-जिस तरह मृषावाद का दोप न लगे उस तरह से (भासिज्ज) वोले ॥४४॥

सुक्कीय वा सुविक्कीय, अकिज्ज किज्जमेव वा ।
इम गिण्ह इम मुच, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

अन्वयार्थः— (मुक्कीय) तुमने अमुक माल खरीद लिया सो अच्छा किया (वा) अथवा (सुविक्कीय) तुमने अमुक माल वेच दिया सो ठीक किया (अकिज्ज) यह वस्तु खरीदने योग्य नही है (वा) अथवा (किज्जमेव) यह वस्तु खरीदने योग्य है (इय) यह (पणीय) वस्तु-किराना इस समय (गिण्ह) ले लो खरीद लो क्योंकि इसमे लाभ होगा (इम) इस समय यह वस्तु (मुच) वेच डालो-क्योकि आगे जाकर इसमे नुकसान होगा (नो वियागरे) इस प्रकार साधु को नही कहना चाहिए ॥४५॥

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा ।
पणिअट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्ज वियागरे ।।४६।।

अन्वयार्थः— (अप्पग्घे) अल्पमूल्य वाले (वा) अथवा (महग्घे वा) बहुमूल्य वाले पदार्थ को (कए वा) खरीदने के विषय मे (वि वा) अथवा (विक्कए) बेचने के विषय मे यदि कभी (पणिअट्ठे) व्यापार सम्बन्धी प्रसङ्ग (समुप्पन्ने) उपस्थित हो जाय तो साधु (अणवज्ज) निरवद्य वचन (वियागरे) बोले अर्थात् ऐसा कहे कि व्यापार-वाणिज्य के विषय मे बोलने का साधुओ का कोई प्रयोजन नही है ।।४६।।

तहेवासजय धीरो, आस एहि करेहि वा ।
सय चिट्ठ वयाहीत्ति, नेव भासिज्ज पन्नव ।।४७।।

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (धीरो) धैर्यवान् और (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (असजय) गृहस्थ के प्रति (आस) यहाँ बैठो (एहि) इधर आओ (वा) अथवा (करेहि) यह काम करो (सय) यहाँ सो जाओ (चिट्ठ) यहाँ खडे रहो (वयाहीत्ति) यहाँ से चले जाओ (एव) इस प्रकार (न भासिज्ज) न बोले ।।४७।।

वहवे इमे असाहू, लोए वुच्चति साहुणो ।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहुत्ति आलवे ।।४८।।

अन्वयार्थः— (लोए) लोक मे (इमे) ये (वहवे) बहुत से (असाहू) असाधु भी (साहुणो) साधु (वुच्चति) कहे जाते हैं-किन्तु बुद्धिमान् साधु (असाहु) असाधु को (साहुत्ति) साधु (न लवे) न कहे किन्तु (साहुं) साधु को

ही (साहुत्ति) साधु (आलवे) कहे ॥४८॥

नाण दंसण संपन्न, संजमे य तवे रयं।
एवं गुणसमाउत्त, संजयं साहुमालवे ॥४६॥

अन्वयार्थः— (नाण दंसण संपन्न) सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन से युक्त (संजमे) सत्रह प्रकार के संयम मे (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रयं) अनुरक्त (एवं) इस प्रकार के (गुणसमाउत्त) गुणो से युक्त (संजय) साधु को ही (साहु) साधु (आलवे) कहना चाहिए ॥४६॥

देवाणं मणुयाणं च, तिरियाण च वुग्गहे।
अमुयाण जओ होउ, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५०॥

अन्वयार्थः— (देवाण) देवताओ के (च) तथा (मणुयाण) मनुष्यो के (च) और (तिरियाण) तिर्यंचों के-पशु-पक्षियो के (वुग्गहे) पारस्परिक युद्ध मे (अमुयाणं-अमुगाण) अमुक पक्ष की (जओ) जीत (होउ) हो (वा) और (मा होउ) अमुक पक्ष की जीत न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले ॥५०॥

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा।
कया णु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

अन्वयार्थः— शीत-तापादि से पीडित होकर साधु (वाओ) वायु (च) और (वुट्ठं) वृष्टि (सीउण्हं) ठंड और गर्मी (खेमं) रोगादि की शान्ति (धायं) धान्य की अच्छी फसल (सिवं ति) सुख शान्ति (एयाणि) ये सब (कया णु) कब (हुज्ज) होगे ? (वा) अथवा (मा होउ) ये सब बातें न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) न कहे ॥५१॥

तहेव मेहं व नहं व माणवं, न देव देवत्ति गिरं वइज्जा ।
समुच्छिए उन्नए वा पओए, वइज्ज वा वुट्ठ बलाहय त्ति ॥५२॥

अन्तलिक्ख त्ति ण बूया, गुज्झाणुचरिअ त्ति य ।
रिद्धिमंतं नरं दिस्स, रिद्धिमंत ति आलवे ॥५३॥

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (मेहं) मेघ को (व) अथवा (नहं) आकाश को (व) अथवा (माणवं) राजा आदि को देखकर (देव देव) यह देव है (त्ति) इस प्रकार का (गिरं न वइज्जा) वचन साधु न बोले-किन्तु यदि प्रयोजन पडे तो मेघ के प्रति (समुच्छिए) यह मेघ ऊंचा चढ रहा है (वा) अथवा (उन्नए) यह मेघ उन्नत है (वा) अथवा (पओए) यह मेघ जल से भरा हुआ है अथवा (वुट्ठ बलाहय) यह मेघ वर्ष चुका है (त्ति) इस प्रकार अदूषित वचन (वइज्ज) कहे और (णं) आकाश के प्रति (अंतलिक्ख) यह अन्तरिक्ष है (य) अथवा (गुज्झाणुचरिअ) देवो के आने-जाने का मार्ग है (त्ति) इस प्रकार (बूया) कहे (रिद्धिमंतं) किसी सम्पत्तिशाली (नरं) मनुष्य को (दिस्स) देखकर (रिद्धिमंत) यह सम्पत्तिशाली है (ति) इस प्रकार (आलवे) कहे ॥५२-५३॥

तहेव सावज्जणुमोअणी गिरा ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।
से कोह लोह भय हास माणवो, न हासमाणो वि गिरं वइज्जा ५४

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (जा) जो (गिरा) भाषा (सावज्जणुमोअणी) सावद्य पाप कर्म का अनुमोदन करने वाली हो (ओहारिणी) निश्चयकारी हो (य) और (परोवघाइणी) प्राणियो का उपघात करने वाली एवं दूसरो

को पीडा पहुंचाने वाली हो (से) ऐसी (गिर) भाषा (माणवो) साधु (कोहलोह भय हास) क्रोध, लोभ, भय और हास्य के वश होकर (हासमाणो वि) हसी-मजाक में भी न (वइज्जा) न बोले ।।५४।।

सुवक्कसुद्धि समुपेहिया मुणी, गिर च दुट्ठं परिवज्जए सया ।
मियं अदुट्ठ अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहई पससणं ।।५५।।

अन्वयार्थः— (मुणी) जो मुनि (सुवक्कसुद्धि-सवक्क-सुद्धि) वाक्य की शुद्धि को (समुपेहिया) भलीभाँति समझ कर (दुट्ठं) मृषावादादि दोषयुक्त (गिर) भाषा को (सया) हमेशा (परिवज्जए) छोड़ देता है और (अणुवीइ) सोच-विचार कर (मिय) परिमित (च) और (अदुट्ठ-अदुट्ठ) निरवद्य वचन (भासए) बोलता है वह साधु (सयाणमज्झे) सत्पुरुषो के बीच मे (पससणं) प्रशंसा (लहई) प्राप्त करता है ।।५५।।

भासाइ दोसे य गुणे य जाणिया, तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया ।
छसु संजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ५६

अन्वयार्थः— (छसु) छः काय जीवो की (सजए) रक्षा करने वाला (सामणिए) चारित्र धर्म मे (सया) सदा (जए) उद्यम करने वाला (बुद्धे) बुद्धिमान् साधु (भासाइ) भाषा के (दोसे) दोषो को (य) और (गुणे) गुणो को (जाणिया) जानकर (तीसे) भाषा के (दुट्ठे) दोषो को (सया) सदा (परिवज्जए) त्याग दे (य) और (हिय) सब प्राणियो के हितकारी (य) तथा (अणुलोमिय) सब प्राणियो के अनुकूल भाषा (वइज्ज) बोले ।।५६।।

परिक्खभासी सुसमाहिइदिए, चउक्कसायावगए अणिस्सिए ।
से निद्धुणे घुन्नमल पुरेकड, आराहए लोगमिणं तहां पर ।५७।
(त्ति बेमि)

अन्वयार्थः— (परिक्खभासी) भाषा के गुण-दोषों का विचार करके बोलने वाला (सुसमाहि इदिए) सब इन्द्रियों को वश में रखने वाला (चउक्कसायावगए) क्रोधादि चार कषायों से रहित (अणिस्सिए) सासारिक प्रतिबन्धों से मुक्त (से) भाषा समिति का आराधक मुनि (पुरेकडं) पूर्व उपार्जित (धुन्नमल धुत्तमल) कर्मरूपी मैल को (निद्धुणे) नष्ट करके (इणं) इस लोक (तहा) तथा (परं लोग) पर-लोक दोनों को (आराहए) सम्यक् आराधना कर लेता है अर्थात् सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है ।।५७।। (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

'आचार प्रणिधि' नामक आठवाँ अध्ययन

आयारप्पणिहिं लद्धु, जहाँ कायव्व भिक्खुणा ।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥

अन्वयार्थ — श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य ज
स्वामी को कहते हैं कि- हे आयुष्मन् शिष्य ! (आय
प्पणिहिं) सदाचार के भण्डार स्वरूप साधुत्व को (लद्
प्राप्त करके (भिक्खुणा) साधु को (जहा) जिस प्र
(कायव्व) आचरण करना चाहिए (तं) उसकी विधि (
मैं (भे) तुमसे (उदाहरिस्सामि) कहूंगा सो तुम (अ
पुव्वि) अनुक्रम से (सुणेह) सावधान होकर सुनो ॥१॥

पुढविदग अगणिमारुअ, तणरुक्खस्स बीयगा ।
तसा य पाणा जीव त्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२॥

अन्वयार्थः— (पुढवि) पृथ्वीकाय (दग) अप
(अगणि) तेउकाय (मारुअ) वायुकाय तथा (तणरुक्ख
बीयगा) तृण वृक्ष और बीज रूप वनस्पतिकाय (य)
(तसा पाणा) त्रस प्राणी ये सब (जीव त्ति) जीव हैं (
इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर स्वामी ने (वु
फरमाया है ॥२।

तेसिं अच्छण जोएण, निच्चं होयव्वयं सिया ।
मणसा कायवक्केणं, एव हवइ संजए ॥३॥

अन्वयार्थः — मुनि को (मणसा) मन (कायवक्केण) वचन और काया से (निच्च) निरन्तर (तेसिं) पूर्वोक्त छः काय जीवो के साथ (अच्छणजोएण) अहिंसा का (होयव्वय सिया) बर्ताव करना चाहिये (एव) ऐसा करने से ही (सजए) वह मुनिपद के योग्य (हवइ) होता है ॥३॥

पुढवि भित्ति सिल लेलु, नेव भिंदे न संलिहे ।
तिविहेण करणजोएण, सजए मुसमाहिए ॥४॥

अन्वयार्थः (सुसमाहिए) चारित्र की आराधना में सावधान समाधिवत (सजए) मुनि (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (भित्ति) भीत को (सिल) शिला को (लेलु) मिट्टी के ढेले को (तिविहेण करण जोएण) तीन करण तीन योग से अर्थात् मन वचन काया द्वारा करना कराना अनुमोदना रूप से (नेव) न तो (भिंदे) भेदे-टुकड़ा करे और (न सलिहे) न घिसे अर्थात् उन पर लकीर न खीचे ॥४॥

सुद्ध पुढवी न निसीए, ससरक्खम्मि य आसणे ।
पमज्जित्तु निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गह ॥५॥

अन्वयार्थः (सुद्ध पुढवी) शस्त्र से अपरिणत-सचित्त पृथ्वी पर (य) और (ससरक्खम्मि) सचित्त रज से भरे हुए (आसणे) आसनादि पर (न निसीए) मुनि न बैठे किन्तु यदि अचित्त भूमि हो तो (जस्स) उसके स्वामी का (उग्गह) आज्ञा (जाइत्ता) लेकर (पमज्जित्तु) रजोहरण से पूजकर (नीसीइज्जा) बैठे ॥५॥

सीओदग न सेविज्जा, सिलावुट्ठ हिमाणि य ।
उसिणोदग तत्तफासुय, पडिगाहिज्ज संजए ॥६॥

अन्वयार्थः— (सजए) साघु (सीओोदगं) नदी, कुए, तालाब आदि के सचित्त जल (सिला) ओले-गड़े (वुट्ठ) वरसात का जल (य) और (हिमाणि) बर्फ इन सव का (न सेविज्जा) सेवन न करे किन्तु (तत्तफासुय) तप्त प्रासुक (उसिणोदग) उष्ण जल एव प्रासुक घोवन पानी को ही (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे ॥६॥

उदउल्ल अप्पणो काय, नेव पु छे न सलिहे ।
समुप्पेह तहाभूयं, नो ण सघट्टए मुणी ॥७॥

अन्वयार्थः— किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर गये हुए मुनि का (अप्पणो) अपना (कायं) शरीर (उद-उल्ल) यदि कदाचित् बरसात पडने से भीग जाय तो अप्काय के जीवो की रक्षा के लिए (मुणी) मुनि (ण) अपने शरीर को (न पु छे) न तो वस्त्रादि से पोछे और (नेव सलिहे) न अपने हाथो से देह को मले किन्तु (तहा-भूय) अपने शरीर को जल से भीगा हुआ (समुप्पेह) देख कर साघु अपने शरीर का (नो सघट्टए) सघट्टा-स्पर्श भी न करे ॥७॥

इगाल अगणिं अच्चि, अलाय वा सजोइयं ।
न उजिज्जा न घट्टिज्जा, नो ण निव्वावए मुणी ॥८॥

अन्वयार्थः— (मुणी) मुनि (इगाल) अङ्गारे को (अगणिं) अग्नि को (अच्चि) ज्वाला सहित अग्नि को (वा) अथवा (सजोइयं) अग्नि सहित (अलाय) अघजले काठ को (न उजिज्जा) अधिक न जलावे (न घट्टिज्जा) संघट्टा न करे और (नो) न (ण) उस अङ्गारादि को (निव्वावए) पानी आदि से वुझावे ॥८॥

तालियटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेण वा ।
न वीइज्जऽप्पणो काय, बाहिर वावि पुग्गल ॥९॥

अन्वयार्थः—(तालियटेण) ताड़ वृक्ष के पखे से (पत्तेण) पत्तो से (साहाए) वृक्ष की शाखा से (वा) अथवा (विहुयणेण) पखे से अथवा वस्त्रादि से मुनि (अप्पणो) अपने (काय) शरीर पर (न वीइज्ज) हवा न करे (वावि) इसी प्रकार (बाहिर) बाहरी (पुग्गल) पदार्थों को अर्थात् गर्म दूधादि को ठडा करने के लिए हवा भी न करे ॥९॥

तणरुक्ख नछिंदिज्जा, फल मूल च कस्सई ।
आमग विविह बीय, मणसा वि न पत्थए ॥१०॥

अन्वयार्थः— साधु (तणरुक्ख) तृण-घास वृक्षादि को तथा (कस्सई) किसी वृक्षादि के (फल) फल (च) और (मूल) जड को (न छिंदिज्जा) न काटे तथा (विविह) नाना प्रकार के (आमग) सचित्त (बीय) बीजों को सेवन करने की (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे ॥१०॥

गहणेसु न चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा ।
उदगम्मि तहा निच्च, उत्तिगपणगेसु वा ॥११॥

अन्वयार्थः—(गहणेसु) वृक्षो के कुज मे एव गहन वन में (बीएसु) बीजो पर (वा) अथवा (हरिएसु) दूब आदि हरित काय पर (तहा) तथा (उदगम्मि) उदक नाम की वनस्पति पर अथवा जहां जल फैला हुआ हो ऐसी जगह पर (वा) तथा (उत्तिग) सर्पच्छत्रा-सर्प के छत्र के आकार वाली वनस्पति पर तथा (पणगेसु) पनक उल्लि नामक

वनस्पति विशेष पर एवं लीलन-फूलन पर (निञ्च) कभी भी (न चिट्ठिज्जा) खडा न रहे तथा न बैठे और न सोवे ।.११॥

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा ।
उवरओ सव्वभूएसु, पासेज्ज विविह जग ।१२॥

अन्वयार्थः— (तसे) द्वीन्द्रियादि त्रस (पाणे) प्राणियो की (वाया) वचन से (कम्मुणा) काया से (अदुव) अथवा मन से भी (न हिंसिज्जा) हिंसा न करे किन्तु (सव्वभूएसु) प्राणीमात्र पर (उवरओ) समभाव रखता हुआ (विविह) नाना प्रकार के त्रस-स्थावर रूप (जग) ससार को (पासे-ज्ज) ज्ञानदृष्टि से देखे अर्थात् ऐसा विचार करे कि नरक तिर्यंचादि गतियों मे जीव कर्मो के वश होकर नाना दुख पा रहे हैं ॥१२॥

अट्ठ सुहुमाइ पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए ।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा ॥१३॥

अन्वयार्थः— (संजए) साधु (जाइ) जिन-आगे कहे जाने वाले (अट्ठ) आठ प्रकार के (सुहुमाइ) सूक्ष्म जीवो को (जाणित्तु) जानने से (भूएसु) जीवो पर (दयाहिगारी) दया का अधिकारी होता है-उन जीवो को (पेहाए) भली-भाँति देखकर (आस) बैठे (चिट्ठ) खड़ा रहे (वा) अथवा (सएहि) सोवे ॥१३॥

कयराइ अट्ठ सुहुमाइ, जाइ पुच्छिज्ज सजए ।
इमाइ ताइ मेहावी, आइक्खिज्ज वियक्खणो ॥१४॥

अन्वयार्थ— (संजए) संयती शिष्य (पुच्छिज्ज) प्रश्न

करता है कि हे भगवन् ! (जाइ) जिन जीवों को-जानने से मुनि दया का अधिकारी होता है वे (अट्ठ सुहुमाइ) आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव (कयराइ) कौन से हैं ? (मेहावी) बुद्धिमान् (वियक्खणो) विचक्षण गुरु (आइक्खिज्ज) कहते हैं कि (ताइ) वे (इमाइ) ये हैं ।१४।।

सिणेह पुप्फसुहुम च, पाणुत्तिग तहेव य ।
पणग बीयहरिय च, अडसुहुम च अट्ठम ।।१५।।

अन्वयार्थः—(सिणेह) ओस, बर्फ, धुँअर, ओले आदि (च) और (पुप्फसुहुमं) बड़ और उदुम्बर आदि के फूल जो सूक्ष्म तथा उसी रग के होने से जल्दी नजर नही आते (तहेव) उसी प्रकार (पाण) कुन्थुआ आदि सूक्ष्म जीव-जो चलते हुए ही दिखाई देते है स्थिर नजर नही आते (य) और (उत्तिग) कीडीनगरा-कीड़ियो का बिल (पणग) चौमासे मे भूमि और काठ आदि पर होने वाली पाँच रग की लीलन-फूलन (बीय) शाली आदि बीज का अग्रभाग-जिससे अकुर उत्पन्न होता है (च) और (हरिय) नवीन उत्पन्न हुई हरितकाय-जो पृथ्वी के समान वर्ण वाली होती है (च) और (अट्ठम) आठवां (अडसुहुम) अण्डसूक्ष्म अर्थात् मक्खी, कीडी, छिपकली आदि के सूक्ष्म अण्डे–ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं।।१५।।

एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण सजए ।
अप्पमत्तो जए निच्च, सव्विदिए समाहिए ।१६।।

अन्वयार्थ —(सजए) साधु (एव) इस प्रकार (एयाणि) पूर्वोक्त आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवों को (जाणित्ता) जानकर

(सव्विंदिय समाहिए) सब इन्द्रियों का दमन करता हुआ एव (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित होकर (निच्च) हमेशा (सव्वभावेण) सब भावो से-तीन करण तीन योग से (जए) इनकी यतना करने मे सावधान रहे ॥१६॥

धुव च पडिलेहिज्जा, जोगसा पायकवल ।
सिज्जमुच्चारभूमि च, सथार अदुवाऽऽसण ॥१७॥

अन्वयार्थः— साधु (पायकवल) पात्र और कवल (सिज्जं) शय्या (च) और (उच्चारभूमि) उच्चारभूमि-मलादि त्यागने का स्थान (संथार) बिछौना (अदुवा) अथवा (आसणं) पीठ फलकादि आसन-इन सबका (जोगसा) एकाग्र चित्त से (चं) और (धुव) नित्य नियमपूर्वक यथासमय (पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे ॥१७॥

उच्चारं पासवण, खेलं सिघाण जल्लिय ।
फासुय पडिलेहित्ता, परिट्ठाविज्ज सजए । १८ ।

अन्वयार्थः — (सजए) साधु (फासुय) जीव रहित स्थान की (पडिलेहित्ता) प्रतिलेखना करके वहाँ (उच्चार) विष्टा (पासवण) मूत्र (खेल) कफ और (सिघाणजल्लिय) नाक का मैल आदि (परिट्ठाविज्ज) यतनापूर्वक परठवे ।१८।

पविसित्तु परागार, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
जय चिट्ठे मिय भासे, न य रूवेसु मण करे ॥१९॥

अन्वयार्थ.— (पाणट्ठा) पानी के लिए (वा) अथवा (भोयणस्स) भोजन के लिए (परागार) गृहस्थ के घर मे (पविसित्तु) प्रवेश करके साधु (जय) यतनापूर्वक खड़ा रहे तथा (मिय) आवश्यकतानुसार परिमित (भासे) वचन

बोले (य) और (रूवेसु) वहाँ स्त्र्यादि के रूप सौन्दर्य को देखकर (मण) मन को (न करे) चचल न होने दे ॥१६॥

बहुं सुणेइ कन्नेहिं, बहु अच्छीहिं पिच्छइ ।
न य दिट्ठं सुय सव्व, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥२०॥

अन्वयार्थः— (भिक्खू) साधु (कन्नेहिं) कानो से (बहु) बहुत कुछ बुरी-भली बातें (सुणेइ) सुनता है (य) तथा (अच्छीहिं) आँखों से (बहुं) बहुत कुछ भले-बुरे पदार्थों को (पिच्छइ) देखता है किन्तु (दिट्ठ) देखी हुई (सुय) सुनी हुई (सव्व) सब बाते (अक्खाउ) किसी से कहना (न अरिहइ) साधु को उचित नही है ॥२०॥

सुय वा जइ वा दिट्ठ, न लविज्जोवघाइय ।
न य केणइ उवाएण, गिहिजोग समायरे ॥२१॥

अन्वयार्थ.— (सुय वा) सुनी हुई (जइ वा) अथवा (दिट्ठ) देखी हुई बात (उवघाइय) किसो भी प्राणो को द्रव्य भाव से पीडा पहुचाने वाली हो तो (नलविज्ज) साधु न कहे (य) और (केणइ-केण) किसी भी (उवाएणं) कारण से (गिहिजोग) गृहस्थ का कार्य-अर्थात्-उसके बच्चो को खेलाना आदि काय (न समायरे) कदादि न करे ॥२१॥

निट्ठाण रसनिज्जूढ, भद्दग पावग ति वा ।
पुट्ठो वावि अपुट्ठो वा, लाभालाभ न निद्दिसे ॥२२॥

अन्वयार्थ.— (पुट्ठो) किसी के पूछने पर (वावि) अथवा (अपुट्ठो) बिना पूछे साधु (निट्ठाण) सरस आहार मिला हो तो उसे (भद्दग) यह आहार तो अच्छा है (ति) इस प्रकार (न निद्दिसे) न कहे (वा) अथवा (रसनिज्जूढ)

नीरस आहार मिला हो तो उसे (पावग) यह आहार तो बुरा है इस प्रकार न कहे (वा) और इसी तरह (लाभालाभ) आज तो आहार खूब मिला है अथवा आज आहार नही मिला है इस प्रकार आहार के लाभालाभ के विषय मे भी साधु कुछ न कहे ॥२२॥

न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उछ अयपिरो ।
अफासुय न भु जिज्जा, कीयमुद्देसियाहड ॥२३॥

अन्वयार्थः— (भोयणम्मि) भोजन मे (गिद्धो) गृद्ध होकर साधु केवल धन सम्पन्न गृहस्थों के घर ही (न चरे) गोचरी के लिए न जावे किन्तु (उछ) ज्ञात-अज्ञात कुल में एव गरीब और धनवान् दोनो प्रकार के दाताओ के घर मे (चरे) समान भाव से गोचरी जावे (य) और (अयपिरो) दाता को अवगुणवाद न बोलता हुआ जो कुछ मिल जाय उसी मे संतुष्ट रहे (अफासुय) सचित्त मिश्र आदि अप्रासुक (कीय) साधु के लिए खरीदा हुआ (उद्देसिय) साधु के निमित्त बनाया हुआ (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ आहारादि ग्रहण न करे-किन्तु यदि कदाचित् भूल से ग्रहण कर लिया गया हो तो उसे (न भु जिज्जा) न भोगवे ॥२३॥

सनिहिं च न कुव्विज्जा, अणुमाय पि सजए ।
मुहाजीवी असवद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए ॥२४॥

अन्वयार्थ — (सजए) साधु (अणुमाय पि) अणुमात्र भी (सनिहिं) घी, गुड आदि पदार्थों का सचय (न कुव्विज्जा) न करे किन्तु (मुहाजीवी) नि स्वार्थभाव से एव सावद्य व्यापार के विना भिक्षा लेकर संयमी जीवन व्यतीत

करने वाला (असबद्धे) गृहस्थो के प्रतिबन्ध से मुक्त (च) और (जगनिस्सिए) छ काय जीवों का रक्षक (हविज्ज) बने । २४॥

लूहवित्ती सुसतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया ।
आसुरत्त न गच्छिज्जा, सुच्चा ण जिणसासण ॥२५॥

अन्वयार्थः— साधु (लूहवित्ती) रूखा-सूखा खाकर सयम निर्वाह करने वाला (सुसतुट्ठे) जैसा रूखा-सूखा निर्दोष आहार मिले उसी मे सन्तुष्ट रहने वाला (अप्पिच्छे) अल्प इच्छा वाला और (सुहरे) किसी भा प्राणी को कष्ट न पहुचा कर अल्प आहार से ही सतोष करने वाला अर्थात् ऊनोदरी आदि तप करने वाला (सिया) हो और (ण) क्रोधादि के कटु परिणामो को बताने वाले (जिणसासण) जिनशासन को-जिनवचनो को (सुच्चा) सुनकर (आसु-रत्ता) किसी के प्रति क्रोध (न गच्छिज्जा) न करे ॥२५॥

कन्नसुक्खेहिं सद्देहिं, पेम्म नाभिनिवेसए ।
दारुण कक्कस फासं, काणए अहियासए ॥२६॥

अन्वयार्थः— साधु (कन्नसुक्खेहिं) कानो को प्रिय लगने वाले (सद्देहिं) शब्दो मे (पेम्म) रागभाव (नाभि-निवेसए) न करे-और इसी प्रकार (दारुण) दु.खजनक एव (कक्कस) कठोर (फास) स्पर्श को (काएण) शरीर से (अहियासए) सहन करे किन्तु द्वेष न करे-अर्थात् मनोज्ञ शब्दादि विषयो मे साधु को रागभाव और अमनोज्ञ शब्दादि विषयो मे द्वेष न करना चाहिए ॥२६॥

खुह पिवास दुस्सिज्ज, सीउण्ह अरइ भय ।
अहियासे अव्वहिओ, देहदुक्खं महाफल ॥२७॥

अन्वयार्थः— साधु (खुहं) भूख (पिवास) प्यास (दुस्सिज्ज) विषम भूमि वाला निवास स्थान (सीउण्ह) सर्दी और गर्मी (अरइ) अरति और (भय) चोर व्याघ्रादि का भय-इन सब परीषहो को (अव्वहिओ) अदीन भाव से (अहि-यासे) सहन करे-क्योकि (देहदुक्ख) शारीरिक कष्टो को सम-भावपूर्वक सहन करने से ही (महाफल) मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति होती है ॥२७॥

अत्थगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइय सव्वे, मणसा वि न पत्थए ।२८।

अन्वयार्थः— (आइच्चे) सूर्य के (अत्थगयम्मि) अस्त हो जाने पर (य) और (पुरत्था अणुग्गए) प्रात काल सूर्य के उदय न होने तक (सव्व) सब प्रकार के (आहार-माइय-आहारमइय) आहारादि को साधु (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे–तो फिर वचन और काया की तो बात ही क्या ? ॥२८॥

अतितिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे।
हविज्ज उअरे दंते, थोव लद्धु न खिसए ॥२६॥

अन्वयार्थः—(अतितिणे) तिनतिनाहट न करता हुआ अर्थात्-आहारादि के न देने पर भी गृहस्थ का अवर्णवाद न बोलने वाला (अचवले) चपलता रहित (अप्पभासी) अल्प भाषी (मियासणे) परिमित आहार करने वाला-अल्पाहारी (उअरे दते) उदर का दमन करने वाला अर्थात् भूख-प्यास आदि परीषहो को समभावपूर्वक सहन करने वाला (हवि-ज्ज) होवे तथा (थोव) थोडा आहार (लद्धु) मिलने पर (न खिसए) खीझे नही अर्थात् दाता की अथवा उस पदार्थ

की निन्दा न करे ॥२९॥

न वाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे ।
सूयलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सिबुद्धिए ॥३०॥

अन्वयार्थ - साधु (वाहिर) किसी भी व्यक्ति का (न परिभवे) अपमान तिरस्कार न करे और (अत्ताण न समुक्कसे) न आत्मप्रशंसा करे (सूयलाभे) श्रुतज्ञान की प्राप्ति होने पर श्रुतज्ञान का (जच्चा) जाति का (तवस्सि-बुद्धिए) तप का और बुद्धि का (न मज्जिज्जा) मद न करे अर्थात् कुल, वल, रूप, ऐश्वर्य आदि किसी का मद न करे ॥३०॥

से जाणमजाणं वा, कट्टु आहम्मियं पय ।
सवरे खिप्पमप्पाण, वीय त न समायरे ।३१॥

अन्वयार्थ.— (जाण) जानते हुए (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से प्रमादवश (आहम्मिय) यदि कदाचित् कोई अधार्मिक (पय) कार्य (कट्टु) हो जाये तो (से) निर्ग्रन्थाचार का पालन करने वाला मुनि उसे छिपाने की चेष्टा न करे किन्तु (खिप्प) शीघ्र तत्काल (अप्पाण) प्रायश्चित्त द्वारा उस पाप को दूर कर अपनी आत्मा को (सवरे) निर्मल वना ले और (वीय) फिर दुबारा (तं) वैसा पाप कार्य-वैसी भूल (न समायरे) न होने पावे उसके लिए सावधान रहे ॥३१॥

अणायार परक्कम्म, नेव गूहे न निण्हवे ।
सुई सया वियडभावे, असंसत्तो, जिइंदिए ॥३२॥

अन्वयार्थः— (सुई) निर्मल बुद्धि वाले (वियडभावे)

सरल चित्त वाले (असंसत्तो) विषयो की आसक्ति रहित और (सया) सदा (जिइंदिए) इन्द्रियों को वश मे रखने वाले मुनि को अनाचार का सेवन न करना चाहिये किन्तु प्रमादवश (अणयारं) अनाचार का (परक्कम्म) सेवन हो गया हो तो-गुरु महाराज के पास आलोचना कर उसका प्रायश्चित ले, किन्तु आलोचना करते समय (नेवगूहे) अधूरी बात कह कर उसे छिपाने की कोशिश न करे और (न निण्हवे) न असली बात को छिपाने के लिए मायाचार का सेवन करे किन्तु जो बात जिस तरह से हुई हो उसे उसी रूप में ज्यो की त्यो कह दे ॥३२॥

> अमोहं वयण कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ।
> त परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥३३॥

अन्वयार्थः– (महप्पणो) ज्ञानादि गुणो के धारक महात्मा (आयरियस्स) आचार्य महाराज के (वयण) वचन को-आज्ञा को (अमोह) सफल (कुज्जा) करे-अर्थात् (त) आचार्य महाराज की आज्ञा को (वायाए) 'तहत्ति आपकी आज्ञा शिरोधार्य है' इत्यादि आदरसूचक शब्दो से (परिगिज्झ) स्वीकार करे किन्तु केवल वचनो द्वारा स्वीकार कर ही न रह जाय अपितु उस आज्ञा को (कम्मुणा) कार्य द्वारा (उववायए) अपने आचरण मे लावे ॥३३॥

> अधुवं जीविय नच्चा, सिद्धिमग्ग वियाणिया ।
> विणिअट्टिज्ज भोगेसु, आउ परिमियमप्पणो ॥३४॥

अन्वयार्थः – (जीविय) इस जीवन को (अधुव) अस्थिर एवं क्षणभगुर (नच्चा) जानकर तथा (अप्पणो)

अपने (आउ) आयुष्य को (परिमियं) परिमित-थोड़ा जानकर अर्थात् न जाने क्षण मे क्या हो जायगा ऐसा जानकर तथा (सिद्धिमग्ग) सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को (वियाणिया) कल्याणकारी समझ कर साधु (भोगेसु) कामभोगों से (विणिअट्टिज्ज) सर्वथा निवृत्त हो जाय ॥३४॥

बल थाम न पेहाए, सद्धामारुग्ग मप्पणो ।
खित्त काल च विन्नाय, तहप्पाण निजुजए ॥३५॥

अन्वयार्थ — (अप्पणो) अपने मानसिक बल को (च) और (थामं) शारीरिक बल को तथा (सद्धां) श्रद्धा-दृढता को और (आरुग्ग) आरोग्य तन्दुरुस्ती को (पेहाए) देखकर (च) तथा (खित्त काल) द्रव्य क्षेत्र काल भाव को (विन्नाय) जानकर (तहप्पाण) जैसा अपना बलादि देखे उसी प्रकार अपनी आत्मा को (निजुंजए) तपश्चर्यादि धर्म कार्य में लगावे-किन्तु प्रमाद न करे ॥३५॥

जरा जाव न पीडेई वाही जाव न वड्ढई ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्म समायरे ॥३६॥

अन्वयार्थ — महापुरुष फरमाते हैं कि हे आर्यो ! (जाव) जब तक (जरा) बुढापा-जरा रूपी राक्षसी (न पीडेई) पीड़ित नही करती अर्थात् तुम्हारे शरीर को जर्जरित नही बना डालती (जाव) जब तक (वाही) व्याधि-नाना प्रकार के रोग (न वड्ढई) तुम्हारे शरीर को नही घेर लेते और (जाव) जब तक (इदिया) श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ (न हायति) शक्तिहीन होकर शिथिल नही हो

जाती (ताव) तब तक-इससे पहले-पहले (धम्म) श्रुत चारित्र रूप धर्म का (समायरे) आचरण कर लेना चाहिए अर्थात् जब तक धर्म का साधनभूत यह शरीर स्वस्थ एव सुदृढ बना हुआ है तब तक धार्मिक क्रियाओ का खूब आचरण कर लेना चाहिए क्योकि उपरोक्त अङ्गो में से किसी भी अङ्ग की हानि हो जाने पर फिर यथावत् धर्म का आचरण नही हो सकता ॥३६॥

कोह माणं च मायं च, लोभ च पाववड्ढण ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छतो हियमप्पणा ॥३७॥

अन्वयार्थः— (अप्पणो) अपनी आत्मा का (हिय) हित (इच्छतो) चाहने वाले साधु को (पाववड्ढण) पाप को बढाने वाले (कोह) क्रोध (च) तथा (माण) मान (माय) माया (च) और (लोभ) लोभ इन (चत्तारि) चार (दोसे) दोषो का (उ) अवश्य ही (वमे) त्याग कर देना चाहिए ३७

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥३८॥

अन्वयार्थः—(कोहो) क्रोध (पीइं) प्रीति का (पणासेइ) नाश कर देता है (माणो) मान-अहकार भाव (विणयनासणो) विनय का नाश कर देता है (माया) माया-कपटाई (मित्ताणि) मित्रता का (नासेइ) नाश कर देती है और (लोभो) लोभ (सव्वविणासणो) सभी सद्गुणो का नाश कर देता है ॥३८॥

उवसमेण हणे कोह, माणं मद्दवया जिणे ।
माय चज्जव भावेण, लोभ सतोसओ जिणे ॥३९॥

अन्वयार्थः—(कोह) क्रोध को (उवसमेण) क्षमा रूपी खड्ग से (हणे) नष्ट करे (माण) मान को (मद्दवया) मृदुता-विनय भाव से (जिणे) जीते (माय) माया को (अज्जवभावेण) सरलता से जीते (च) और (लोभ) लोभ को (संतोसओ) संतोष से (जिणे) जीते ॥३९॥

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइ पुणब्भवस्स ।४०।

अन्वयार्थः— (कोहो) क्रोध (य) और (माणो य) मान ये दोनो (अणिग्गहीया) क्षमा और विनय से शान्त न किये गये हो (य) और (माया) माया (य) तथा (लोभो) लोभ ये दोनों (पवड्ढमाणा) सरलता और संतोष रूपी सद्गुणों को धारण न करने से बढ़ रहे हों तो (कसिणा) आत्मा को मलीन बनाने वाले (एए) ये (चत्तारि) चारो (कसाया) कषाय (पुणब्भवस्स) पुनर्जन्म रूपी विषवृक्ष की (मूलाइ) जडों को (सिंचंति) सींचते हैं-अर्थात् ये चारों कषाय जन्म-मरण रूपी संसार को बढाते हैं ॥४०॥

रायणिएसु विणय पउंजे, धुवसीलयं सययं न हावइज्जा।
कुम्मुव्व अल्लीणपलीणगुत्तो, परक्कमिज्जा, तव संजमम्मि ४१

अन्वयार्थः— (रायणिएसु) रत्नाधिक अर्थात् दीक्षा में अपने से बडे चारित्रवृद्ध और ज्ञानवृद्ध गुरुजनो की (विणय) विनय (पउंजे) करे (धुवसीलयं) अपने उच्च चारित्र का अर्थात् अठारह हजार शीलाङ्ग का (सययं) कदापि (न हावइज्जा) त्याग न करे और (कुम्मुव्व) कछुए की भाँति (अल्लीणपलीणगुत्तो) अपने समस्त अङ्गोपाङ्गों

को वश में रखता हुआ साधु (तवसंजमम्मि) तप-सयम मे (परक्कमिज्जा) उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करे ॥४१॥

निद्दं च न बहु मन्निज्जा, सप्पहासं विवज्जए ।
मिहो कहाहि न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥४२॥

अन्वयार्थः—साधु (निद्द) निद्रा का (न बहुमन्निज्जा) बहुत आदर न करे अर्थात् अधिक न सोवे (च) और (सप्पहास) अधिक हसी-मजाक करना (विवज्जए) त्याग दे (मिहो कहाहिं) किसी की गुप्त बातो को सुनने मे तथा स्त्रीकथा आदि मे (न रमे) आसक्त न होवे किन्तु (सया) सदा (सज्झायम्मि) वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथ रूप स्वाध्याय मे (रओ) रत रहे ॥४२॥

जोग च समणधम्मम्मि जुजे अनलसो धुव ।
जुत्तो य समणधम्मम्मि, अट्ठ लहइ अणुत्तर ॥४३॥

अन्वयार्थः— (अनलसो) आलस्य का सर्वथा त्याग करके (जोग) मन, वचन, काया रूप तीन योगों को (च) और कृत, कारित, अनुमोदन रूप तीन करण को (समण धम्मम्मि) क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम सत्य, शौच, अकिंचनत्व और ब्रह्मचर्य रूप दस श्रमण धर्म में (धुव) निरन्तर (जुजे) लगावे (य) क्योकि (समणधम्म-म्मि) श्रमण धर्म मे (जुत्तो) लगा हुआ मुनि (अणुत्तर) सर्वोत्कृष्ट (अट्ठ) अर्थ को-मोक्ष को (लहइ) प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

इहलोगपारत्तहियं, जेण गच्छइ सुग्गइ ।
बहुस्सुय पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थ विणिच्छयं ॥४४॥

अन्वयार्थः— (जेण) जिससे (इहलोगपारत्तहियं) इस लोक मे और परलोक में हित होता है तथा (सुग्गइं) सुगति की (गच्छइ) प्राप्ति होती है-ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधु (बहुस्सुय) आगमो के मर्म को जानने वाले बहुश्रुत मुनि की (पज्जुवासिज्जा) पर्युपासना-सेवा-शुश्रूषा करे और सेवा शुश्रूषा करता हुआ (पुच्छिज्ज) प्रश्न पूछ-पूछ कर (अत्थविणिच्छय) पदार्थों का यथार्थ निश्चय करे ॥४४॥

हत्थ पाय च काय च, पणिहाय जिइदिए ।
अल्लीणगुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी ॥४५॥

अन्वयार्थः— (जिइंदिए) जितेन्द्रिए (मुणी) मुनि (हत्थ) हाथ (च) और (पायं) पैर (च) तथा (काय) शरीर को (पणिहाय) जिस प्रकार गुरु महाराज का अविनय न हो उस प्रकार से सकोच कर तथा (अल्लीणगुत्तो) मन वचन काया से सावधान होकर (गुरुणो) गुरु के (सगासे) समोप (निसिए) बैठे ॥४५॥

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न य उरु समासिज्जा, चिट्ठिज्जा गुरुणतिए ॥४६॥

अन्वयार्थ.— (किच्चाण) आचार्य महाराज के (पक्खओ) पसवाडे की तरफ अर्थात् शरीर से शरीर चिपा कर (न चिट्ठिज्जा) न बैठे और (न पुरओ) न एकदम मुख के नजदीक बैठे (नेव पिट्ठओ) तथा पीठ पीछे भी न बैठे (य) और (गुरुणतिए) गुरु के सामने (उरु) पैर पर पैर (न समासिज्जा) रखकर न बैठे अर्थात् अविनयसूचक आसनो से न बैठे ॥४६॥

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अतरा ।
पिट्ठिमस न खाइज्जा, मायामोस विवज्जए ॥४७॥

अन्वयार्थः— विनीत शिष्य (अपुच्छिओ) गुरु महाराज के विना पूछे और (भासमाणस्स) गुरु महाराज जब किसी से बातचीत कर रहे हो तब (अतरा) बीच-बीच मे (न भासिज्जा) न बोले और (पिट्ठिमस) किसी की पीठ पीछे निन्दा (न खाइज्जा) न करे और (मायामोस) कपटसहित झूँठ भी (विवज्जए) न बोले ॥४७॥

अप्पत्तिया जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो त न भासिज्जा, भास अहियगामिणि ॥४८॥

अन्वयार्थः—(जेण) जिस भाषा के बोलने से (अप्पत्तियं) अप्रीति-द्वेष या अविश्वास (सिया) पैदा हो (वा) अथवा जिससे (परो) दूसरा व्यक्ति (आसु) शीघ्र (कुप्पिज्ज) कुपित हो जाता हो तो (त) उस प्रकार की (अहियगामिणि) अहित करने वाली (भास) भाषा साधु (सव्वसो) कभी (न भासिज्जा) न बोले ॥४८॥

दिट्ठ मिया असदिद्ध, पडिपुन्न विया जियं ।
अयापिरमणुव्विग्ग, भास निसिर अत्तव ॥४९॥

अन्वयार्थः— (अत्तव) आत्मज्ञानी साधु (दिट्ठ) साक्षात् देखी हुई (मिया) परिमित (असदिद्ध) सन्देहरहित (पडिपुन्न) पूर्वापर सम्बन्ध सहित (विया) स्पष्ट अर्थ वाली (जिय) चालू विषय का प्रतिपादन करने वाली (अयपिर) मध्यस्थ भाव से उच्चारण की हुई (अणुव्विग) किसी को उद्वेग-पीडा न पहुचाने वाली (भास) भाषा (निसिर) बोले ॥४९॥

आयारपन्नत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं ।
वायविक्खलिय नच्चा, न त उवहसे मुणी ॥५०॥

अन्वयार्थः— (अपारपन्नत्तिधर) आचारांग व्याख्या प्रज्ञप्ति आदि के ज्ञाता अथवा आचारधर-स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग आदि का ज्ञान रखने वाला और प्रज्ञप्तिधर-स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्ग आदि के विशेषणो को विशेष रूप से जानने वाला और (दिट्ठिवाय) दृष्टिवाद का (अहिज्जग) अध्ययन करने वाला अथवा प्रकृति प्रत्यय लोप आगम वर्णविकार लकार आदि व्याकरण के सभी अङ्गो को भली प्रकार जानने वाला मुनि भी यदि कदाचित् (वायविक्खलिय) बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाय अर्थात् लिङ्गादि से अशुद्ध शब्द का प्रयोग कर बठे तो (नच्चा) उनके अशुद्ध वचन को जानकर (मुणी) साधु (त) उन महापुरुषो का (न उवहसे) उपहास न करे ॥५०॥

नक्खत्तं सुमिण जोगं, निमित्तमत भेसज ।
गिहिणो त न आइक्खे, भूयाहिगरण पय ॥५१॥

अन्वयार्थः— (नक्खत्त) नक्षत्र विद्या (सुमिणं) स्वप्नो का शुभाशुभ फल बतलाने वाली विद्या (जोगं) वशीकरणादि चूर्ण योग (निमित्त) भूत, भविष्य का फल बताने वाली निमित्त विद्या (मत) भूत वगैरह निकालने की मंत्र-विद्या (भेसजं) अतिसार आदि रोगो की औषधि (तं) ये सब बातें साधु (गिहिणो) गृहस्थो को (न आइक्खे) न बतावे क्योकि ये (भूयाहिगरणं) प्राणियो के अधिकरण के (पय) स्थान हैं-अर्थात् इनकी प्ररूपणा करने से छ.काय जीवों की हिंसा होती है ॥५१॥

अन्नट्ठं पगडं लयणं, भइज्ज सयणासणं ।
उच्चार भूमिसपन्नं. इत्थीपसु विवज्जिय ॥५२॥

अन्वयार्थः— (लयण) जो मकान (अन्नट्ठ) गृहस्थ ने अपने निज के लिए (पगड) बनाया हो अर्थात् जो मकान साधु का निमित्त रखकर बनाया गया हो तथा (उच्चार-भूमिसपन्न) जिसमे मलमूत्रादि परठवने के लिए स्थान हो और (इत्थीपसुविवज्जिय) जो मकान स्त्री, पशु, पण्डक आदि से रहित हो ऐसे मकान में साधु (भइज्ज) ठहर सकता है और इसी तरह (सयणासयण) जो शय्या तथा पाट-पाटलादि गृहस्थ ने अपने लिए बनाये हो उन्हे साधु अपने उपयोग मे ले सकता है ॥५२॥

विवित्ता य भवे सिज्जा, नारीणं न लवे कह ।
गिहिसथव न कुज्जा, कुज्जा साहुहिं सथवं ॥५३॥

अन्वयार्थः— (सिज्जा) यदि स्थानक (विवित्ता) विविक्त (भवे) हो अर्थात् वहां साधु अकेला ही हो तो (नारीणं) स्त्रियो के साथ (कह) बातचीत (न लवे) न करे तथा उन्हे धर्मकथादि भी न सुनावे (य) तथा (गिहि-संथवं) गृहस्थो के साथ अतिपरिचय भी (न कुज्जा) न करे किन्तु (साहूहिं) साधुओ के साथ ही (सथव) परिचय (कुज्जा) करे ॥५३॥

जहा कुक्कुड पोयस्स, निच्चं कुललओ भय ।
एव खु बभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥५४॥

अन्वयार्थः— (जहा) जिस प्रकार (कुक्कुड पोयस्स) मुर्गी के बच्चे को (निच्च) हमेशा (कुललओ) बिल्ली से

(भया) भय बना रहता है (एवं खु) उसी प्रकार (बंभया-रिस्स) ब्रह्मचारी पुरुष को (इत्थोविग्गहओ) स्त्री के शरीर से सदा (भय) भय मानते रहना चाहिए ।।५४।।

> चित्त भित्ति न निज्झाए, नारि वा सुअलकिया ।
> भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठि पडिसमाहरे ।।५५।

अन्वयार्थः— साधु (चित्त भित्ति) स्त्री के चित्रो से युक्त भीत को (वा) अथवा (सुअलकिय-सअलकियं) अच्छे वस्त्राभूषणों से सजी हुई एव बिना सजी हुई (नारि) कैसी भी स्त्री को (न निज्झाए) अनुरागपूर्वक न देखे । यदि कदाचित् अकस्मात् उधर दृष्टि पड जाय तो (भक्खर पिव) जिस प्रकार सूर्य को (दट्ठूण) देखकर लोग अपनी दृष्टि को तत्काल हटा लेते है उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी (दिट्ठि) अपनी दृष्टि को (पडिसमाहरे) तत्काल पीछी हटा लेवे- क्योकि जिस प्रकार सूर्य की तरफ अधिक देर तक देखने से दृष्टि निर्बल हो जाती है ठीक उसी प्रकार स्त्री की तरफ अनुरागपूर्वक देखने से चारित्र में निर्बलता आ जाती है ।।५५।।

> हत्थपाय पलिच्छिन्न कण्णनासविगप्पियं ।
> अवि वाससय नारि, बभयारी विवज्जए ।५६।।

अन्वयार्थः— (हत्थपाय पलिच्छिन्न-पडिच्छिन्न) जिस स्त्री के हाथ पैर कट गये हो और (कण्णनासविगप्पिय) कान-नाक कटी हुई हो अथवा विकृत हो गई हो (अवि-वाससय) जो सौ वर्ष की आयु वाली पूर्ण वृद्धा एव जर्ज-रित शरीर वाली हो गई हो (नारि) ऐसी स्त्रियों के

संसर्ग को भी (वंभयारी) ब्रह्मचारी साधु (विवज्जए) त्याग दे अर्थात् स्त्रियो का ससर्ग कदापि न करे ॥५६॥

विभूसा इत्थीससग्गो, पणीय रस भोयणं ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउड जहा ॥५७॥

अन्वयार्थः— (अत्तगवेसिस्स) आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले (नरस्स) ब्रह्मचारी पुरुष के लिए (विभूसा) शरीर की शोभा (इत्थीससग्गो) स्त्री का ससर्ग (पणीय-रसभोयण) पौष्टिक आहार-ये सब-(तालउड) तालपुट नामक (विस) उग्र विष के (जहा) समान हैं-अर्थात् जिस प्रकार तालपुट नाम का विष तालु के लगते ही प्राणो को हर लेता है उसी प्रकार शरीर की विभूषा आदि दुर्गुण भी साधु के गुणो को नष्ट कर देते हैं ॥५७॥

अग पच्चंग सठाण, चारुल्लविय पेहिय ।
इत्थीण त न निज्झाए, कामरागविवड्ढण ॥५८॥

अन्वयार्थ —(इत्थीण) स्त्रियों के (अंगपच्चग सट्ठाणं) अ ग-उपांग की रचना (चारुल्लविय पेहिय) मनोहर बोलना और कटाक्षविक्षेपादि युक्त मनोहर देखना (त) इन सबकी तरफ ब्रह्मचारी पुरुप को (न निज्झाए) रागपूर्वक न देखना चाहिए क्योकि ये सव (कामरागविवड्ढण) कामविकार को वढाने वाले हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करने वाले हैं। ५८॥

विसएसु मणुन्नेसु, पेम नाभिनिवेसए ।
अणिच्च तेसिं विन्नाय, परिणाम पुग्गलाण उ ॥५९॥

अन्वयार्थः— (तेसिं) उन शव्दादि विषय सम्वन्धी

(पुग्गलाण) पुद्गलों के (परिणाम) परिणाम को (अणि-च्च) अनित्य (विन्नाय) जानकर बुद्धिमान् साधु (मणुन्नेसु) मनोज्ञ (विसएसु) शव्दादि विषयो मे (पेमं) रागभाव (नाभिनिवेसए) न करे (उ) और इसी तरह अमनोज्ञ विषयों मे द्वेष भी न करे-क्योकि क्षणभर में मनोज्ञ पदार्थ अमनोज्ञ और अमनोज्ञ पदार्थ मनोज्ञ हो जाते हैं ऐसी अवस्था मे रागभाव और द्वेषभाव करना व्यर्थ है ॥५९॥

पोग्गलाण परीणाम, तेसिं नच्चा जहा तहा ।
विणीयतण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा ॥६०॥

अन्वयार्थः – (तेसिं) उन शव्दादि विषय सम्वन्धी (पोग्गलाण) पुद्गलो को (परीणाम-परीणाम) परिणाम को (जहा तहा) यथावत्-जैसा है वैसा (नच्चा) जानकर अर्थात् जो वस्तु आज सुन्दर दिखाई देती है वही कल असुन्दर और असुन्दर वस्तु सुन्दर दिखाई देने लगती है इस प्रकार पुद्गलो के परिणाम को जानकर साधु (विणीयतण्हो-तिण्हो) लालसा-रहित होकर (सीईभूएण अप्पणा) अपनी आत्मा को शान्त वनाकर (विहरे) विचरे अर्थात् सयममार्ग का आराधन करे ॥६०॥

जाइ सद्धाइ निक्खतो, परियायट्ठाणमुत्तम ।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरिय समए ॥६१॥

अन्वयार्थः – (जाइ-जाए) जिस (सद्धाइ-सद्धाए) श्रद्धा से एव वैराग्यभाव से (उत्तम) उत्तम (परियायट्ठाणं) चारित्र को-प्रव्रज्या को (निक्खतो) स्वोकार किया है (तमेव) उसी श्रद्धा तथा पूर्ण वैराग्य से (आयरिय समए) महा-पुरुषों द्वारा वताये गये (गुणे) उत्तम गुणों मे अनुरक्त रह-

कर (अणुपालिज्जा) साधु को संयम धर्म का यथावत् पालन करना चाहिए ॥६१॥

तव चिम सजम जोगयं च, सज्झायजोग च सया अहिट्ठए ।
सुरे व सेणाइ समत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अल परेंसि ।६२।

अन्वयार्थ — (व) जिस प्रकार (सेणाइ) चतुरगिणी सेना से घिरा हुआ तथा (समत्तमाउहे) शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित (सुरे) शूरवीर पुरुष अपनी रक्षा करता हुआ दूसरो की भी रक्षा करता है उसी प्रकार (इमं च) इस बारह प्रकार के (तव) अशनादि तप (च) और (संजम जोगय) छः जीव निकाय की रक्षा रूप सयम (च) तथा (सज्झायजोगं) स्वाध्याय योग का (सया) सदा (अहिट्ठिए) आराधन करने वाला मुनि (अप्पणो) अपनी आत्मा की रक्षा करने मे एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ (होइ) होता है और (परेंसि) दूसरों की भी रक्षा एव कल्याण करने मे (अल) समर्थ होता है अथवा अपनी आत्मा की रक्षा करता हुआ कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने मे समर्थ होता है ॥६२॥

सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झई ज सि मल पुरेकडं, समीरिय रुप्पमल व जोइणा ६३

अन्वयार्थ —(व) जिस प्रकार (जोइणा) अग्नि द्वारा (समीरिय) तपाए हुए (रुप्पमल) सोने चांदी का मैल दूर हो जाता है उसी प्रकार (सज्झाए) वाचना आदि पाच प्रकार की स्वाध्याय और (सज्झाण सुज्झाणरयस्स) धर्मध्यान, शुक्लध्यान मे तल्लीन (ताइणो) छ काय जीवो के रक्षक (अपावभावस्स) निष्पापी शुद्ध अन्त करण वाले और (तवे) तपस्या मे (रयस्स) रत (सि-से) साधु का (पुरे-

कडं) पूर्वभव संचित्त (जं मल) पाप रूपी मैल (विसुज्झई) नष्ट हो जाता है ॥६३॥

से तारिसे दुक्खसहे जिइदिए, सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे।
विरायई कम्मघणम्मि अवगए, कसिणब्भपुडावगमे व चदिमे
॥६४॥ त्ति बेमि।

अन्वयार्थ — (व) जिस प्रकार (कसिणब्भपुडागमे) सम्पूर्ण बादलो के हट जाने पर (चदिमे) शरत्कालीन पूर्णमासी का चन्द्रमा (विरायई) शोभित होता है उसी प्रकार (तारिसे) पूर्वोक्त गुणो का धारक (दुक्खसहे) अनुकूल-प्रतिकूल सभी परीषहो को समभावपूर्वक सहन करने वाला (जिइदिए) जितेन्द्रिय (सुएणजुत्ते) श्रुतज्ञान से युक्त (अममे) ममत्व भाव से रहित (अकिंचणे) द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित (से) वह साधु (कम्मघणम्मि) ज्ञानावरणीयादि कर्मरूप। बादलो के (अवगए) दूर हो जाने पर (विरायई) निर्मल केवलज्ञान के प्रकाश से शोभित होता है ॥६४॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का पहला उद्देश।

थंभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणय न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फल व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थः—जो साधु (थंभा) अहकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणय) विनय धर्म की (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नही करता है तो (सो चेव) वे अहंकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणो को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बाँस का (फल) फल (वहाय होइ) स्वय बाँस को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसा बाँस के फल आने पर बाँस का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा मे अविनय को उत्पन्न करने वाले अहकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र का नाश हो जाता है ॥१॥

जे यावि मदित्ति गुरु विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुएत्ति नच्चा।
हीलति मिच्छ पडिवज्जमाणा, करति आसायण ते गुरूण ।२।

अन्वयार्थः—(जे) जो साधु (गुरु) गुरु को (मदित्ति) यह मन्द बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझकर (यावि) अथवा

(इमे) यह (डहरे) बालक है (अप्पसुएत्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा) मानकर (हीलति) हीलना-निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरूण) गुरुजनो को (आसायण) आशातना (करंति) करते है जिससे उन्हे (मिच्छ) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है ॥२॥

पगईइ मदावि भवति एगे, डहरा विय जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ३

अन्वयार्थः— (एगे) बहुत से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइ-पगईए) स्वभाव से (मदावि) मदबुद्धि (भवति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत से (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुयबुद्धोववेया) शास्त्रों के ज्ञाता एव बुद्धिमान् होते हैं-ज्ञान में न्यूनाधिक होने पर भी (आयारमता) सदाचारी और (गुणसुट्ठिअप्पा) मूलगुण उत्तरगुणों का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनो का अपमान न करना चाहिए क्योकि (सिहिरिव) जिस प्रकार अग्नि इंधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनो की हीलना उसके ज्ञानादि गुणो को (भास कुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनो की आशातना करने से ज्ञानादि गुणो का नाश हो जाता है ॥३॥

जे यावि नाग डहरति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ।
एवायरियपि हु हीलयतो, नियच्छई जाइपह खु मदो ॥४॥

अन्वयार्थः—(जे यावि) जो कोई मूर्ख मनुष्य (डहरति) यह छोटा है इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नागं) साप को (आसायए) छेडता है-लकड़ी आदि से उसे सताता

है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है (एव) उसी प्रकार (आयरियपि) आचार्य महाराज की (हीलयंतो) हीलना करने वाला (मदो-मदे) मन्द बुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपह) एकेन्द्रियादि जातियों में (नियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फंस कर अनन्त संसारी बन जाता है ॥४॥

आसीविसो वावि पर सुरुट्ठो, किं जीवनासाउ पर नु कुज्जा।
आयरिय पाया पुण अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो ५

अन्वयार्थ — (आसीविसो) दृष्टिविष सांप (पर) अत्यन्त (सुरुट्ठो वावि) कुपित हो जाने पर भी (जीवना-साउ) प्राणनाश से (पर) अधिक (किं नु कुज्जा) और क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ नही कर सकता किन्तु जो शिष्य (आयरिय पाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसन्ना) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु को आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है जिससे (पुण) फिर (नत्थिमुक्खो) उसे मोक्ष को प्राप्ति नही होती ॥५॥

भावार्थः — साप का काटा हुआ प्राणी एक ही दफा मरता है किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को बारम्बार जन्म-मरण करना पडता है।

जो पावगं जलिअमवक्कमिज्जा, आसीविसं वावि हु कोवइज्जा।
जो वा विस खायइ जीवियट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरूण ॥६॥

अन्वयार्थः— जो अभिमानी शिष्य (गुरूण) गुरु महा-

राज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलिअं) जलती हुई (पावग) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरो से कुचलकर बुझाना चाहता है (वावि) अथवा जो (आसीविस) दृष्टि-विष सर्प को (हु कोवइज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (जीवियट्ठी) जीने की इच्छा से (विस) हलाहल विष को (खायइ) खाता है ॥६॥

सिया हु से पावय नो डहिज्जा,
आसीविसो वा कुवियो न भक्खे।
सिया विस हलाहलं न मारे,
न यावि मुक्खो गुरु हीलणाए ॥७॥

अन्वयार्थः— (सिया हु) यदि कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पैर रखने वाले पुरुष के पैर को (पावय) अग्नि (नो डहिज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टि-विष सप भी (न भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हलाहल) हलाहल नामक (विस) तीव्र विष भी (न मारे) अपना असर न दिखावे अर्थात् खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सव बातें असम्भव है तथापि विद्याबल एव मन्त्रबल से यदि कदाचित् सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरु हीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (न याविमुक्खो) कभी भो मोक्ष प्राप्त नही हो सकता ।७॥

जो पव्वय सिरसा भित्तुमिच्छे,
सुत्तं व सीहं पडिवोहइज्जा ।

जो वा दए सत्ति अग्गे पहारं,
एसोवमाऽऽसायणया गुरूण ॥८॥

अन्वयार्थः—जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरूण) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (पव्वयं) पर्वत को (सिरसा) मस्तक की टक्कर से (भित्तु) फोड़ना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्त) सोते हुए (सीह) सिंह को (पडिबोहइज्जा) लात मारकर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार को धार पर (पहार दए) मुष्टि का प्रहार करता है ॥८॥

भावार्थ—उपरोक्त कार्य करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है इसी तरह गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे,
सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदिज्ज व सत्ति अग्गं,
न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए। ९॥

अन्वयार्थ— (सिया हु) यदि कदाचित् कोई वासुदेवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिंदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीहो) सिंह भी (न भक्खे) न खावे (व) अथवा (सिया) कदाचित् (सत्ति अग्ग) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (न भिंदिज्ज) हाथ

न कटे अर्थात् ये असम्भव बातें सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य को (न यावि मुक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नही हो सकता ॥९॥

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा ॥१०॥

अन्वयार्थः (आयरियपाया) पूज्य पाद आचार्य महाराज को (आसायण) आशातना करके (पुण अप्पसन्ना) उन्हें अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अबोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (नत्थि मुक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नही हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणबाहसुहाभिकखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने मे (रमिज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे ॥१०॥

जहाहिअग्गी जलण नमसे, नाणाहुईमत पयाभिसित्तं।
एवायरिय उवचिट्ठइज्जा, अणत नाणोवगओऽवि सतो ॥११॥

अन्वयार्थः—(जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (नाणहुईमत) पयाभिसित्ता) नाना प्रकार की घृतादि की आहुतियों से तथा वेदमन्त्रो से सस्कार की हुई (जलण) यज्ञ की अग्नि को (नमसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणतनाणोवगओऽवि) अनन्त ज्ञान सपन्न (सतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरिय)

आचार्य महाराज की (उपचिट्ठइज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥११॥

जस्सतिए, धम्मसयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणाइय पउजे ।
सक्कारए सिरसा पजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्च १२

अन्वयार्थः— (भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते हैं कि-शिष्य का यह कर्तव्य है कि (जस्सतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइं) धर्म शास्त्रो की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्सतिए) उनकी सदा (वेणइय) विनय-भक्ति (पउजे) करे (पजलीओ) दोनो हाथ जोडकर (सिरसा) और मस्तक झुकाकर नमस्कार करे (य) और (काय-ग्गिरा मणसा) मन वचन काया से (निच्च) सदा (सक्का-रए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खडे होना, उन्हे वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यों से उनका विनय करे ॥१२।

लज्जा दया संजम बभचेर, कल्लाणभागिस्स विसोहिठाण ।
जे मे गुरू सययमणुसासयति, तेऽह गुरू सयय पूययामि ॥१३॥

अन्वयार्थः— (लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जा भय (दया) दया अनुकम्पा (सजम) सयम और (बभचेर) ब्रह्म-चर्य ये चारो (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाण) विशुद्धि के स्थान हैं । इसलिए शिष्य को यह भावना रखना चाहिए कि (जे) जो (गुरू) गुरु महाराज (मे) मुझे उनको (सयय) सदा (अणुसासयति) शिक्षा देते हैं (तेऽह-तेहिं गुरु) उन गुरु महाराज की मुझे (सयय) सदा (पूययामि) विनय-भक्ति करनी चाहिए ॥१३॥

जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासई केवल भारहं तु ।
एवायरियो सुयसीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इदो ॥१४॥

अन्वयार्थः— (जहा) जिस प्रकार (निसते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रात काल (तवणच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूर्य अपनी किरणो से (केवलभारहं तु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरियो) आचार्य महाराज (सुयसील बुद्धिए) अपने ज्ञान, चारित्र तथा तात्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और (व) जिस प्रकार (सुरमज्झे) देवो मे (इदो) इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य महाराज भी साधुओ के बीच मे (विरायई) शोभित होते हैं ॥१४॥

जहा ससी कोमुइ जोग जुत्तो, नक्खत्त तारागण परिवुडप्पा ।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ।१५।

अन्वयार्थः— (जहा) जिस प्रकार (नक्खत्त तारागण परिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओ के समूह से घिरा हुआ (कोमुइ जोगजुत्तो) कार्तिक पूर्णमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलो से रहित (विमले) अतीव निर्मल (खे) आकाश मे (सोहई) शोभित होता है (एव) इसी प्रकार (गणी) आचार्य महाराज (भिक्खु-मज्झे) साधु समूह के मध्य मे (सोहइ) शोभित होते हैं ॥१५॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहि जोगे सुयसीलबुद्धिए ।
सपाविउकामे अणुत्तराइ, आराहए तोसइ धम्मकामी ॥१६॥

अन्वयार्थः—(अणुत्तराइ) उत्कृष्ट ज्ञानादि भाव रत्नो

को (संपाविउकामे) प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्म-कामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नों के भण्डार (सुयसीलबुद्धिए) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहि जोगे) समाधिवंत (महेसी) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (आराहए) आराधना करे और (तोसइ) उनको विनय-भक्ति करके उन्हे प्रसन्न रखे ॥१६॥

सुच्चाण मेहावी सुभासियाइ, सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो ।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे, से पावई सिद्धिमणुत्तर ॥१७॥
त्ति बेमि ।

अन्वयार्थः— (मेहावी) गुरु वचनों को यथार्थ रूप से धारण करने की वुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासि-याइ) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनो को (सुच्चाण) सुनकर (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित होकर (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसए) सेवा-शुश्रूषा करे । इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणो को (आराहइत्ताण) प्राप्त करके (मणुत्तर) उत्तम (सिद्धि) सिद्धि गति को (पावइ) प्राप्त होता है ॥१७॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का दूसरा उद्देशा

मूलाउ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधाउ पच्छा समुविंति साहा ।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ सि पुप्फ च फल रसो य ।१।

अन्वयार्थः— (दुमस्स) वृक्ष के (मूलाउ) मूल
(खघप्पभवो) स्कन्ध-धड उत्पन्न होता है (पच्छा) इ
बाद (खधाउ) स्कन्ध से (साहा) शाखाए (समुविति
उत्पन्न होती हैं (साहाप्पसाहा) शाखाओ से प्रशाखा
छोटी छोटी डालियाँ (विरुहति) उत्पन्न होती हैं और उ
(पत्ता) पत्ते निकलते हैं (तओ) इसके बाद (सि-से)
वृक्ष के क्रमश (पुप्फ) फूल (च) और (फल) फल (
और (रसो) रस उत्पन्न होता है ॥१॥

एवं धम्मस्स विणओ, मूल परमो से मुक्खो ।
जेण किर्त्ति सुय सिग्घ, नीसेसं चाभिगच्छइ ॥२॥

अन्वयार्थः— (एव) इसी प्रकार (धम्मस्स) धर्म
वृक्ष का (मूल) मूल (विणओ) विनय है और (से) उस
(परमो) सर्वोत्कृष्ट फल (मुक्खो) मोक्ष है (जेण)
विनय रूपी मूल द्वारा विनयवान् शिष्य इस लोक मे (कित्ति
कीर्ति और (सुय) द्वादशाङ्ग रूप श्रुतज्ञान को (अभिगच्छ
प्राप्त होता है (च) और-महापुरुषो द्वारा की गई (नीसेस
परम (सिग्घ) प्रशसा को प्राप्त करता है । तत्पश्च
क्रमश. अन्त में नि·श्रेयसरूपी मोक्ष को भी प्राप्त कर ले
है ॥२॥

जे य चडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठ सोयगय जहा ॥३

अन्वयार्थ.— (जहा) जिस प्रकार (सोयगया)
के प्रवाह में पड़ा हुआ (कट्ठ) काष्ठ इधर-उधर ग
खाता है इसी प्रकार (जे) जो मनुष्य (चडे) क्रोधी (थद्ध

अभिमानी (दुव्वाई) कठोर तथा अहितकारी वचन बोलने वाला (नियडी) कपटी (सढे) धूर्त (य) और (अविणी-अप्पा) अविनीत होता है (से) वह (वुज्झइ) चतुर्गति रूप ससार के अनादि प्रवाह मे बहेता रहता है ॥३॥

विणय पि जो उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जति, दडेण पडिसेहए ॥४॥

अन्वयार्थ— (उवाएण) प्रिय वचनादि किसी उपाय से आचार्य महाराज द्वारा (विणयपि-विणयम्मि) विनय धर्म की शिक्षा के लिए (चोइओ) प्ररित किया जाने पर (जो) जो (नरो) अविनीत शिष्य (कुप्पई) क्रोध करता है (सो) मानो वह (इज्जति-एज्जति) अपने घर में आती हुई (दिव्व) दिव्य-अलौकिक (सिरिं) लक्ष्मी को (दडेण) डडे से मार कर (पडिसेहए) वापिस घर से बाहर निकालता है ॥४॥

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसति दुहमेहता, आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥

अन्वयार्थः— (तहेव) दृष्टान्त द्वारा अविनय के दोष बताये जाते हैं यथा– (उववज्झा) राजा-महाराजाओ के सवारी करने योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (अविणी-अप्पा) अविनीतता के कारण अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन न करने के कारण (आभिओगमुवट्ठिया) भार ढोते हुए (दुहमेहता) और अनेक प्रकार का दुःख पाते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥५॥

तहेव सुविणी अप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसति सुहमेहता, इड्ढि पत्ता महासया ॥६॥

अन्वयार्थः— (तहेव) दृष्टान्त द्वारा विनय के गुण बताये जाते हैं यथा--(सुविणीअप्पा) स्वामी की आज्ञा का पालन करना आदि की अच्छी शिक्षा पाये हुए (उववज्झा) राजा-महाराजाओं के सवारी योग्य (गया) हाथी (हया) घोड़ (इड्ढिपत्ता) नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित (महायसा) प्रशंसा प्राप्त महायशस्वी (सुहमेहंता) अनेक प्रकार का सुख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ॥६।

तहेव अविणीअप्पा, लोगम्मि नरनारिओ ।
दीसंति दुहमेहंता, छाया ते विगलिंदिया ॥७॥

अन्वयार्थः— (तहेव) जिस प्रकार तिर्यंचों के विषय मे विनय और अविनय के गुण, दोष बताये गये हैं उसी प्रकार अब मनुष्यों के विषय में बताये जाते है यथा—(लोगम्मि-लोगंसि) इस लोक मे जो (नरनारिओ) पुरुष और स्त्रियाँ (अविणीअप्पा) अविनीत होते हैं (ते) वे (छाया) कोड़े आदि की मार से व्याकुल तथा (विगलिंदिया) नाक, कान आदि इन्द्रियो के काट दिये जाने से विरूप होकर (दुहमेहंता) नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ।७॥

दंड सत्थपरिजुण्णा, असब्भवयणेहि य ।
कलुणा विवन्नच्छंदा, खुप्पिवास परिग्गया ॥८॥

अन्वयार्थः—अविनीत स्त्री, पुरुष (दंडसत्थपरिजुण्णा) दडे और शस्त्रो की मार से व्याकुल (असब्भवयणेहि) कठोर वचनो से तिरस्कृत (कलुणा) दया के पात्र (य) और (विवन्नच्छंदा) पराधीन अतएव (खुप्पिवास-सा-इपरि-

गया) भूख-प्यास से व्याकुल होकर दुःख पाते देखे जाते हैं ॥८॥

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नरनारिओ ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥९॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (लोगंसि) लोक में (नरनारिओ) जो स्त्री, पुरुष (सुविणीअप्पा) विनीत होते हैं वे सब (इड्ढिं) ऋद्धि को (पत्ता) प्राप्त (महायसा) महायशस्वी (सुहमेहंता) नाना प्रकार के सुख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ॥९॥

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥१०॥

अन्वयार्थः—(तहेव) जिस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यों के विषय मे विनय और अविनय के गुण दोष बताये गये हैं उसी प्रकार अब देवों के विषय में बताया जाता है यथा-(अविणीअप्पा) जो जीव अविनीत होते हैं वे आयुष्य पूर्ण करके (देवा) वैमानिक अथवा ज्योतिषी देव (जक्खा) यक्षादि व्यन्तर देव (य) तथा भवनपति आदि गुह्यक देव होने पर भी ऊंची पदवी न पाकर (आभिओगमुवट्ठिया) बड़े देवों के सेवक बनकर उनकी सेवा करते हुए तथा (दुहमेहंता) नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ॥१०॥

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥११॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार (सुविणीअप्पा) जो जीव सुविनीत होते हैं वे (देवा) देव (जक्खा) यक्ष (य) और (गुज्झगा) भवनपति जाति के गुह्यक देव होकर उनमें भी (इड्ढि पत्ता) समृद्धिशाली तथा (महायसा) महा-यशस्वी होते हैं और (सुहमेहता) अलौकिक सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥११॥

जे आयरिय उवज्झायाणं, सुस्सूसावयणंकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ॥१२॥

अन्वयार्थः—(जे) जो शिष्य (आयरिय उवज्झायाणं) आचार्य और उपाध्यायों की (सुस्सूसावयणकरा) सेवा-शुश्रूषा करते हैं और उनके वचनो को मानते हैं (तेसिं) उनकी (सिक्खा) शिक्षा (जलसित्ता) जल से सींचे हुए (पायवा इव) वृक्षों की तरह (पवड्ढति) दिन पर दिन बढती है ॥१२॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पाणे उणिआणि य ।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इह लोगस्स कारणा ॥१३॥

अन्वयार्थः— (गिहीणो) गृहस्थ लोग (इह लोगस्स कारणा) इह लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए (अप्पणट्ठा) अपने लिए (वा) अथवा (परट्ठा) पुत्र-पौत्रादि के (उव-भोगट्ठा) उपयोग मे आने के लिए (सिप्पा) शिल्पकला (य) और (णे उणिआणि) व्यवहार कुशलता आदि सीखते हैं ॥१३॥

जेण वंध वह घोरं, परियावं च दारुणं ।
सिक्खमाणा नियच्छति, जुत्ता ते ललिइदिया ॥१४॥

अन्वयार्थ— (जेण) लौकिककला को सीखने में (जुत्ता) लगे हुए (ललिइंदिया) सुकोमल शरीर वाले (ते) श्रीमतो के पुत्र तथा राजकुमार आदि भी (सिक्खमाणा) शिक्षा पाते समय (घोर) दुस्सह (वह) वध (बध) बन्धन (च) और (दारुण) कठोर (परियाव) परितापना आदि कष्टो को (नियच्छति) सहन करते हैं ॥१४।

तेऽवि त गुरु पूयति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारति, नमसति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो ॥१५॥

अन्वयार्थः— (तेऽवि) वे सुकोमल शरीरवाले राजकुमार आदि इतना कष्ट पाने पर भी (तस्स) उस (सिप्पस्स) शिल्पकला को (कारणा) सीखने के लिए (तुट्ठा) प्रसन्तापूवक (त गुरु) उस शिल्पशिक्षक गुरु की (निद्देसवत्तिणो) आज्ञा का पालन करते हैं (पूयति) वस्त्र, आभूषणो द्वारा सेवा करते हैं (सक्कारति) सत्कार-सम्मान करते हैं और (नमसति) नमस्कार करते हैं ॥१५।

किं पुण जे सुयग्गाही, अणत हियकामए।
आयरिया ज वए भिक्खू, तम्हा त नाइवत्तए ॥१६॥

अन्वयार्थः— जब लौकिक विद्या को सीखने के लिए भी राजकुमार आदि इस प्रकार गुरु की विनयभक्ति करते हैं तो फिर (जे) जो (भिक्खू) मुनि (सुयग्गाही) आगमो के गूढ तत्त्वो के जिज्ञासु हैं तथा (अणत हियकामए) मोक्ष सुख को प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं (किं पुण) उनका तो कहना ही क्या ! अर्थात् उन्हे तो धर्माचार्य का विनय विशेष रूप से करना ही चाहिए। (तम्हा) इसलिए (आयरिया) आचार्य महाराज (ज) जो आज्ञा (वए) फरमावें

(त) उस आज्ञा का (नाइवत्तए) उल्लंघन नही करना चाहिए ॥१६॥

नीय सिज्ज गइ ठाण, नीय च आसणाणि य ।
नीय च पाए वदिज्जा, नीयं कुज्जा य अजलि ॥१७॥

अन्वयार्थः— विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (सिज्ज) अपनी शय्या (ठाण) अपने बैठने का स्थान (च) और (आसणाणि) आसन (नीय) गुरु की अपेक्षा नीचा रक्खे। (गइ) चलते समय भी (नीय) गुरु के आगे-आगे न चले (च) और (नीय) नीचे झुककर (पाए) गुरु के चरणों मे (वदिज्जा) वन्दना करे (य) और (नीय) नीचे झुककर (अजलि कुज्जा) हाथ जोडकर नमस्कार करे।१७।

संघट्टइत्ता काएण, तहा उवहिणामवि ।
खमेह अवराह मे, वइज्ज न पुणुत्ति य ॥१८॥

अन्वयार्थः – यदि कभी असावधानी से (काएण) गुरु महाराज के शरीर के साथ (तहा) तथा (उवहिणामवि) उनके धर्मोपकरणो के साथ (सघट्टाइत्ता) सघट्टा-स्पर्श हो जाय (वइज्ज) तो शिष्य को उसी समय कहना चाहिए कि हे भगवन् ! (मे) मेरा (उवराह) यह अपराध (खमेह) क्षमा करो (य) और (न पुणुत्ति) आज पीछे ऐसा कभी नही करूगा ॥१८॥

दुग्गओ वा पओएण, चोइओ वहई रह ।
एव दुबुद्धि किच्चाण, वुत्तो वुत्तो पकुव्वई ॥१९॥

अन्वयार्थः – (वा) जिस प्रकार (दुग्गओ) दुर्बल-गलियार बैल (पओएण) चाबुक आदि की (चोइओ) मार पड़ने पर ही (रह) गाड़ी को (वहई) खीचता है (एव)

उसी प्रकार (दुवुद्धि) दुष्ट बुद्धि अविनीत शिष्य भी (वुत्तो-वुत्तो) गुरु के बारम्बार कहने पर ही (किच्चाण) उनके कार्य को (पकुव्वई) करता है ॥१६॥

आलवते लवते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे ।
मुत्तूण आसण धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ।२०॥

अन्वयार्थः—(आलवते) गुरु महाराज शिष्य को एक बार वुलावें (वा) अथवा (लवते) बारबार वुलावें तो (धीरो) विनयवान् शिष्य को चाहिए कि वह (निसिज्जाइ) अपने आसन पर वैठे-बैठे ही (न पडिस्सुणे) गुरु महाराज की आज्ञा को सुनकर उत्तर न दे किन्तु (आसणं) झटपट आसन को (मुत्तूण) छोडकर खड़ा हो जाय एव सावधान होकर गुरु महाराज की आज्ञा को सुने और (सुस्सूसाए) विनयपूर्वक (पडिस्सुणे) उसका उत्तर दे ।२०॥

काल छदोवयार च, पडिलेहित्ताणहेउहिं ।
तेण तेण उवाएण, त त सपडिवायए ॥२१॥

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिये कि वह (काल) द्रव्य क्षेत्र काल भाव को (च) और (छदोवयार) गुरु महाराज के अभिप्राय को (हेउहिं) अपनी तर्कणा शक्ति से (पडिलेहित्ताण) जानकर (तेण तेण तेहिं तेहिं) उन-उन (उवाएण-उवाएहिं) उपायो से (त त) उन-उन कार्यों को (सपडिवायए) सम्पादित करे ॥२१॥

विवत्ती अविणीयस्स, सपत्ती विणियस्स य ।
जस्सेय दुहओ नाय, सिक्ख से अभिगच्छइ ॥२२॥

अन्वयार्थः— (अविणीयस्स) अविनीत पुरुप के (विवत्ती) सभी सद्‌गुण नष्ट हो जाते हैं (य) और (विणि-

यस्स) विनीत पुरुष को (संपत्ती) सद्गुणों की प्राप्ति होती है (एय) ये (दुहम्रो) दोनों बातें (जस्स) जिसने (नाय) अच्छी तरह जान ली है (से) वही (सिक्ख) शिक्षा (अभिगच्छइ) प्राप्त कर सकता है ॥२२॥

जे यावि चडे मइइड्ढिगारवे, पिसुणे नरे साहसहीणपेसणे।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए, असविभागी न हु तस्स मुक्खो २३

अन्वयार्थः— (जे यावि) जो (नरे) पुरुष (चडे) क्रोधी (मइइड्ढिगारवे) बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान करने वाला (पिसुणे) चुगलखोर (साहस) साहसी-बिना सोचे-विचारे कार्य करने वाला (हीणपेसणे) गुरु की आज्ञा न मानने वाला (अदिट्ठधम्मे) धर्माचरण से रहित (विणए अकोविए) अविनीत और (असविभागी) असविभागी होता है (तस्स) उसे (मुक्खो) मोक्ष (न हु) प्राप्त नही हो सकता ॥२३॥

निद्देसवित्ती पुण जे गुरुणं, सुअत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओघमिण दुरुत्तर, खवित्तु कम्म गइमुत्तम गय
॥२४॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (गुरूण) गुरु महाराज को (निद्देसवित्ती) आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले हैं (जे सुअत्थधम्मा) तथा जो श्रुतधर्म के गूढ तत्त्वो के रहस्यो को जानने वाले हैं (पुण) और (विणयम्मि कोविया) विनय पालन मे चतुर होते हैं (ते) वे (इण) इस (दुरुत्तर) दुस्तर (ओघ) ससार रूपी समुद्र को (तरित्तु) तिर कर और (कम्म) कर्मों का (खवित्तु) क्षय करके (उत्तमं)

सर्वोत्तम (गइ) सिद्धगति को (गय) प्राप्त करते हैं-तथा उपरोक्त गुणो को धारण करने वाले पुरुषो ने गत काल में सिद्धगति प्राप्त की है और आगामी काल मे ही प्राप्त करेंगे ॥२४॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का तीसरा उद्देशा

आयरियं अग्गिमिवाहिअग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा ।
आलोइयं इंगियमेव नच्चा, जो छंदमाराहयई स पुज्जो ॥१॥

अन्वयार्थ.— (इव) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्नि-होत्री ब्राह्मण (अग्गि) अग्नि को साधना करने में साव-धान रहता है उसी प्रकार (जो) जो शिष्य (आयरिय) आचार्य महाराज की (सुस्सूसमाणो) सेवा-शुश्रूषा करने मे (पडिजागरिज्जा) सदा सावधान रहता है तथा (आलोइयं) उनकी दृष्टि और (इगियमेव) इगिताकार-चेष्टा को (नच्चा) जानकर (छंद) आचार्य महाराज के अभिप्रायो के अनुकूल (आराहयई) कार्य करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१॥

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासाययई स पुज्जो ॥२॥

अन्वयार्थः— जो शिष्य (आयारमट्ठा) आचार प्राप्ति के लिए (विणयं) गुरु महाराज की विनय-भक्ति (पउंजे) करता है और (सुस्सूसमाणो) उनका सेवा करता हुआ (वक्क) उनकी आज्ञा को (परिगिज्झ) स्वीकार करता है

एव (जहोवइट्ठं) उनकी इच्छा के अनुसार (अभिकंखमाणो) कार्य करता है (तु-च) और जो (गुरु) गुरु महाराज की (नासाययई) कभी भी आशातना नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥२।

रायणिएसु विणयं पउजे, डहराऽवि य जे परियायजिट्ठा ।
नीयत्तणे वट्टइ सच्चवाई, उवायव, वक्ककरे स पुज्जो ॥३ ।

अन्वयार्थ — (जे) जो साधु (रायणिएसु) रत्नाधिको की सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय से बड़े मुनियो की (विणय) विनय-भक्ति (पउजे) करता है (य) इसी प्रकार (डहराऽवि) जो मुनि अवस्था मे छोटे हैं किन्तु (परियायजिट्ठा) दीक्षा में बडे हैं उनकी भी विनय-भक्ति करता है (नीयत्तणे) गुरुजनो के सामने नम्रभाव से (वट्टइ) रहता है (सच्चवाई) हितमित सत्य बोलता है (उवायव) सदा गुरु की सेवा मे रहता हुआ (वक्ककरे) उनकी आज्ञा का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥३ ।

अन्नायउंछ चरई विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाण च निच्च ।
अलद्धुय नो परिदेवइज्जा, लद्धु न विकत्थई स पुज्जो ।४।

अन्वयार्थः — जो साधु (निच्चं) सदा (जवणट्ठया) सयमयात्रा के निवाह के लिए (समुयाण) समुदानिक गोचरी करके (अन्नायउंछ) अज्ञात कुल से थोड़ा-थोडा (विसुद्ध) निर्दोष आहार (चरई) लेता है (च) और (अलद्धुय) यदि किसी समय आहार न मिले तो (नो परिदेवइज्जा) खेद नही करता तथा (लद्धुं) इच्छानुसार आहार के

मिलने पर (न विकत्थई) प्रशसा नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ।४।।

सथारसिज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभेऽविसते ।
जो एवमप्पाणभितोसइज्जा, सतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।।५।।

अन्वयार्थ:— (जो) जो साधु (सथारसिज्जासण-भत्तपाणे) सथारा, शय्या, आसन और आहार-पानी के (अइलाभेऽविसते) अधिक मिलते रहने पर भी (अप्पिच्छया) अल्प इच्छा रखता है एव उनमें मूर्च्छाभाव नही रखता हुआ (संतोसपाहन्नरए) सन्तोष भाव रखता है (एव) इस प्रकार जो साधु (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभितोसइज्जा) सभी प्रकार से सन्तुष्ट रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ।।५।।

सक्का सहेउं आसाइ कटया, अओमया उच्छहया नरेणं ।
अणासए जो उ सहिज्ज कटए, वईमए कन्नसरे स पुज्जो ।।६।।

अन्वयार्थ:— (उच्छहया) धनादि की प्राप्ति की (आसाइ) आशा से (नरेणं) मनुष्य (अओमया) लोह के (कटया) तीक्ष्ण बाणो को (सहेउ) सहन करने मे (सक्का) समर्थ हो जाता है (उ) किन्तु (कन्नसरे) कानो मे बाणो की तरह लगने वाले (वईमए) कठोर वचन रूपी (कटए) बाणों को सहन करना बहुत कठिन है फिर भी जो उन्हे (अणासए) किसी भी आशा के बिना (सहिज्ज) समभाव-पूर्वक सहन कर लेता है (स) वह (पुज्जो) वास्तव में पूज्य है ।।६।।

मुहुत्तदुक्खा उ हवति कटया, अओमया तेऽवि तओ सुउद्धरा ।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबधीणि महब्भयाणि ।।७।।

अन्वयार्थः— (अओमया) लोह के (कंटया) काटे-बाण (उ) तो (मुहुत्तदुक्खा) थोडे काल तक ही दुख-दायी (हवंति) होते हैं और (तेऽवि) वे (तओ) जिस अङ्ग मे लगे हैं उस अङ्ग मे से (सुउद्धरा) योग्य वैद्य द्वारा आसानी से निकाले भी जा सकते हैं किन्तु (वायादुरुत्ताणि) कटु वचन रूपी बाणो का (दुरुद्धराणि) निकलना बहुत मुश्किल है-अर्थात् हृदय में चुभ जाने के बाद उनका निक-लना दु साध्य है क्योकि कठोर वचनो का प्रहार हृदय को बीन्ध कर आर-पार हो जाता है (वेराणुबंधीणि) इस लोक और परलोक मे वे वैर-भाव की परम्परा को बढाने वाले हैं तथा-(महब्भयाणि) नरकादि नीच गतियो मे ले जाने के कारण वे महाभय के उत्पन्न करने वाले हैं ॥७॥

समावयता वयणाभिघाया, कन्नं गया दुम्मणियं जणंति ।
धम्मुत्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो ।८।

अन्वयार्थः – (समावयंता) समूह रूप से आते हुए (वयणाभिघाया) कठोर वचन रूपी प्रहार (कन्नं गया) कान मे पड़ते ही (दुम्मणियं) दौर्मनस्य भाव (जणंति) उत्पन्न कर देते हैं अर्थात् कटु वचनो को सुनते ही मन की भावना दुष्ट हो जाती है किन्तु-(धम्मुत्ति) 'क्षमा करना साधु का धर्म है' ऐसा (किच्चा) मान कर (जो) जो साधु उन कठोर वचन रूपी बाणों को (सहई) समभावपूर्वक सहन कर लेता है वह (परमग्गसूरे) वीर शिरोमणि है (जिइंदिए) जितेन्द्रिय है (स) ऐसा साधु (पुज्जो) जगत्पूज्य होता है ॥८॥

अवण्णवायं च परम्मुहस्स,
पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं ।

ओहारिणि अप्पियकारिणि च,
भास न भासिज्ज सया स पुज्जो ॥९॥

अन्वयार्थः— जो साधु (परम्मुहस्स) किसी को पीठ पीछे (च) तथा (पच्चक्खओ) सामने (अवण्णवाय) निंदा नही करता (च) और (पडिणीय) पर पीडाकारी (ओहारिणि-ओहारणि) निश्चयकारी (च) और (अप्पियकारिणि) अप्रियकारी (भास) भाषा (सया) कभी (न भासिज्ज) नही बोलता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥९॥

अलोलुए अक्कुहए अमाई,
अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नोऽवि य भावि अप्पा,
अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥१०।

अन्वयार्थः—जो साधु (अलोलुए) जिह्वा लोलुपी नहीं है एव किसी प्रकार का लोभ-लालच नही करता (अक्कुहए) मत्र-तत्रादि का प्रयोग भी नही करता (अमाई) जो निष्कपट है (अपिसुणे) जो किसी की चुग़ली नही करता (यावि) तथा (अदीणवित्ती) भिक्षा न मिलने पर भी जो दीनता नही दिखलाता (य) और (नो भावए) जो दूसरे को प्रेरणा करके उनसे अपनी स्तुति नही करवाता और (नोऽवि भावि अप्पा) न स्वय अपने मुह से अपनी प्रशसा करता है (य) और जो (सया) कभी (अकोउहल्ले) नाटक खेल, तमाशे आदि देखने की इच्छा नही करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१०।

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू, गुण मुंचऽसाहू ।

वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो राग दोसेहिं समो स पुज्जो ।११॥

अन्वयार्थ.— गुरु महाराज फरमाते हैं कि (गुणेहि) विनयादि गुणो को धारण करने से (साहू) साधु होता है और (अगुणेहि) अविनयादि दुर्गुणो से (असाहू) असाधु होता है अर्थात् साधुपना और असाधुपना गुणो और अवगुणों पर अवलम्बित है । अत हे शिष्यो ! (साहूगुण) साधु के योग्य गुणों को (गिण्हाहि) ग्रहण करो और (असाहू) असाधुगुणो को-अवगुणो को (मु च) छाड दो । इस प्रकार (जो) जो (अप्पएण) अपनी ही आत्मा द्वारा (अप्पग) अपनी आत्मा को (वियाणिया) समझा कर (राग दोसेहिं) राग द्वेष मे (समो) समभाव रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥११॥

तहेव डहर च महल्लगं वा,
इत्थी पुम पव्वइयं गिहिं वा ।
नो हीलए नोऽवि य खिसइज्जा,
थंभ च कोह च चए स पुज्जो ॥१२॥

अन्वयार्थः— (तहेव) इसी प्रकार जो साधु (डहर) बालक (च) और (महल्लग) वृद्ध को, (इत्थी-इत्थी) स्त्री (वा) या (पुम) पुरुष की, (पव्वइय) साधु (वा) या (गिहिं) गृहस्थ की, किसी का भी (नो हीलए) एक बार हीलना-निन्दा नही करता (अवि य) तथा (नो खिसइज्जा) बार-बार हीलना-निन्दा नही करता (च) तथा जो (थभ) अहकार (च) और (कोहं) क्रोध को (चए) छोड देता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१२॥

जे माणिया सययं माणयति,
जत्तेण कन्न व निवेसयति ।
ते माणए माणरिहे तवस्सी,
जिइदिए सच्चरए स पुज्जो ॥१३॥

अन्वयार्थ —(जे) जो शिष्य (सययं) सदा (माणिया) गुरु महाराज को विनय भक्ति द्वारा सम्मानित करते हैं तो (माणयति) गुरु महाराज भी विद्यादान द्वारा उन्हे योग्य बना देते हैं और (व) जिस प्रकार (कन्न) माता-पिता अपनी कन्या का योग्य पति के साथ विवाह कर उसे श्रेष्ठ कुल मे स्थापित कर देते है, उसी प्रकार गुरु महाराज भी (जत्तेण) प्रसत्नपूर्वक उन शिष्यो को (निवेसयति) उच्च श्रेणी पर पहुचा देते हैं (ते) ऐसे (माणरिहे) सम्माननीय उपकारी पुरुषो की (जिइदिए) जो जितेन्द्रिय (सच्चरए) सत्यपरायण (तवस्सी) तपस्वी शिष्य (माणए) विनय-भक्ति करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१३॥

तेसिं गुरूण गुणसायराण, सुच्चाण मेहावि सुभासियाइ ।
चरे मुणी पचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥१४॥

अन्वयार्थ — (तेसिं) उन (गुणसायराण) गुणो के सागर (गुरूण) गुरु महाराज के (सुभासियाइ) सुभाषित उपदेश को (सुच्चाण) सुनकर (मेहावि) जो बुद्धिमान् (मुणी) साधु (पचरए तिगुत्तो) पाच महाव्रत और तीन गुप्तियो से युक्त होकर (चउक्कसायावगए) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो का छोड़ देता है और (चरे) गुरु महाराज की विनय-भक्ति करता हुआ शुद्ध सयम का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१४॥

गुरुमिह सयय पडियरियमुणी,
जिणमयनिउणे अभिगमकुसले ।
धुणिय रयमल पुरेकड,
भासुरमउल गइ वइ ॥१५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ.— जिणमयनिउणे) निर्ग्रन्थ प्रवचनो का ज्ञाता (अभिगमकुसले) ज्ञान कुशल विनीत एव साधुओं की विनय-वैयावच्च करने वाला (मुणी) मुनि (इह) इस लोक मे (गुरु) गुरु महाराज की (सयय) निरन्तर (पडियरिय) सेवा करके (पुरेकड) पूर्वकृत (रयमल) कर्मरज को (धुणिय) क्षय करके (भासुर) अनन्त ज्ञान ज्योति से देदीप्यमान (अउल) सर्वोत्कृष्ट (गइ) सिद्ध गति को (वइ गय) प्राप्त करता है ॥१५॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का चौथा उद्देशा

सुय मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नता । कयरे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नत्ता ? इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नता । तजहा- १ विणयसमाही २ सुयसमाही ३ तवसमाही ४ आयारसमाही ।

अन्वयार्थ.—श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि (आउस) हे आयुष्मन् जम्बू ! (तेणं भगवया) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एव) इस प्रकार

(अक्खाय) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुय) सुना है। यथा-(इह-खलु) जैन सिद्धान्त मे (थेरेहिं) स्थविर (भगवतेहिं) भगवन्तो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवतेहिं) उन स्थविर भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे चत्तारि चार भेद (कयरे) कौन से (पन्नत्ता) बतलाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि-हे आयुष्मन् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवतेहिं) भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। (तजहा) जैसे कि – (विणयसमाही) विनय समाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि।

विणए सुए य तवे, आयारे निच्च पडिया।
अभिरामयति अप्पाण, जे भवति जिइदिया ॥१॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (जिइदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय मे (सुए) श्रुत मे (तवे) तप में (य) और (आचारे) आचार में (निच्च) सदा (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (अभिरामयति) लगाये रहते हैं (पडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवति) कहलाते हैं ॥१॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ, तजहा.- १ अणुसासिज्जतो सुस्सूसइ २ सम्म सपडिवज्जइ ३ वेयमाराहइ ४ न य भवइ अत्तसपग्गहिए चउत्थ पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ — (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तजहा) जैसे कि – १ (अणुसासिज्जतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा शुश्रूषा करना एव उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना । २ (सम्म सपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना । ३ (वेयमाराहइ-वयमाराहयइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एव श्रुतज्ञान की आराधना करना । ४ (न य भवइ अत्तसपग्गहिए) अभिमान न करना एव आत्म-प्रशंसा न करना (चउत्थ) यह चौथा (पय) भेद (भवइ) है (य) और (इत्थ-एत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है । वह इस प्रकार है –

"पेहेइहियाणुसासणं. सुस्सूसई त च पुणो अहिट्ठए ।
न य माणमएण मज्जई, विणयसमाहि आययट्ठिए" ॥२॥

अन्वयार्थः –(आययट्ठिए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासण) हितकारी शिक्षा सुनने को सदा (पेहेइ) इच्छा करे (च) और (त) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए-अहिट्ठिए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और (विणयसमाहि) विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे ॥२॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तखहा :– १ सुय मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्व भवइ, २ एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्व भवइ, ३ अप्पाण ठावइस्सामि त्ति

अज्झाइयव्व भवइ, ४ ठिओ पर ठावइस्सामित्ति अज्झा-इयव्व भवइ चउत्थ पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थः—(सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तंजहा) वे इस प्रकार हैं - १ (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुय) श्रुतज्ञान का (भवि-स्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्व-अज्झाइयव्वय भवइ) अध्ययन करे। २ अध्ययन करने से (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामि त्ति) होगी ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ३ (अप्पाण) मैं अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर करूगा ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ४ (ठिओ) यदि मैं अपने धर्म मे स्थिर होऊगा तो (पर) दूसरो को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर कर सकूगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे (चउत्थ) यह अन्तिम चौथा (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है —

"नाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ य ठावई पर।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए" ॥३॥

अन्वयार्थः— (सुयाणि) शास्त्रो का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (नाण) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एग-ग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म मे स्थिर करता है (य) और (पर) दूसरो को भी (ठावई) धर्म मे स्थिर करता है इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुतसमाधि मे (रओ) सलग्न रहना

चाहिए ॥३॥

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ, तंजहा :-- १ नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, २ नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ३ नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ४ नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, चउत्थ पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगे।

अन्वयार्थः--(तवसमाहि) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) है, (तंजहा) वे इस प्रकार हैं :— १ (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो के लिए एव किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। २ (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो के लिए (तवं) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ३ (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ४ (अन्नत्थनिज्जरट्ठयाए) कर्म निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे (चउत्थ) यह अन्तिम चतुर्थ (एय) पद (भवइ) है। (य) और (इत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी है। वह इस प्रकार है :—

"विविहगुणतवोरए निच्च, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा, धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए" ॥४॥

अन्वयार्थ— मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिये कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तपसमाधि मे (जुत्तो) सलग्न रहे तथा (निच्च) निरन्तर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप मे रत रहता हुआ वह मुनि (निरासए) इह-

लौकिक और पारलौकिक सुखों के लिए आशा न रक्खे किन्तु (निज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिर्जरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावगं) पूर्वसंचित पाप-कर्मों को (धुणइ) नष्ट कर डालता है ॥४।

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ, तंजहा :— १ नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, २ नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा ३ नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयार-महिट्ठिज्जा, ४ नन्नत्थ आरहन्तेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थः— (आयारसमाही) आचार समाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं (तंजहा) वे इस प्रकार हैं— १ (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए एवं लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। २ (परलोग-ट्ठयाए) पारलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ३ (कित्ति-वण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक-श्लाघा के लिए भी (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ४ (आरहन्तेहिं हेऊहिं अन्नत्थ) जैन सिद्धान्त मे कहे हुए कारणो के अतिरिक्त किसी के लिए भी (आयारं) आचार का पालन (न अहिट्ठिज्जा) न करे किन्तु आते हुए आश्रवों के निरोध के लिए आचार का पालन करे-क्योंकि किसी प्रकार की आशा न रखकर आचार का पालन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है- (चउत्थं) यह अन्तिम चतुर्थ (पयं) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय

का (सिलोगो) एक श्लोक भा (भवइ) है वह इस प्रकार है .—

जिणवयणरए अतितिणे, पडिपुन्नाययमाययट्ठिए ।
आयारसमाहिसवुडे, भवइ य दते भावसधए ॥५॥

अन्वयार्थः— (जिणवयणरए) जिन वचनो पर अटल श्रद्धा रखने वाला (अतितिणे) कठोर वचन न बोलने वाला (पडिपुन्न) शास्त्रो के तत्त्वों को भली-भाँति जानने वाला (आयय-आयइ) निरन्तर (आययट्ठिए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दते) इन्द्रियो का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसवुडे) आचारसमाधि द्वारा आश्रवों का निरोध करने वाला मुनि (भावसधए भवइ) शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥५॥

अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ ।
विउलहिय सुहावह पुणो, कुव्वइ य सो पयखेममप्पणो ॥६॥

अन्वयार्थः—(सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहिअप्पओ) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारो प्रकार की (समाहिओ) समाधियों के स्वरूप को (अभिगम) जानकर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावह) सुखकारी (पुणो) एव (खेम) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद को (कुव्वइ) प्राप्त करता है ।६॥

जाइमरणाओ मुच्चइ, इत्थ थ च चएइ सव्वसो ।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥७॥

त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः— उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला मुनि (इत्थ थ-इत्थत्थ) नरकादि पर्यायो का (सव्वसो) सर्वथा (चएइ) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतियो मे नही जाता (य) किन्तु वह (जाइमरणाओ) जन्म-मरण के चक्कर से (मुच्चइ) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (हवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो अल्प काम-विकार वाला-उत्तम कोटि का (महिड्ढिए) महान् ऋद्धि-(देवे) अनुत्तर विमानवासी देव होता है ॥७॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"सभिक्खु" नामक दसवाँ अध्ययन

निक्खम्ममाणाइ य बुद्धवयणे,
निच्च चित्तसमाहिओ हविज्जा ।
इत्थीण वसं न यावि गच्छे,
वंत नो पडिआयइ जे स भिक्खू ॥१॥

अन्वयार्थ— (जे) जो (आणाइ) महापुरुषों के उपदेश से (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (बुद्धवयणे) जिन वचनो मे (निच्च) सदा (चित्तसमाहिओ) स्थिर चित्त वाला (हविज्जा) होता है (यावि) और (इत्थीण) स्त्रियों के (वस न गच्छे) वशीभूत नही होता तथा (वंत) वमन किये हुए-छोड़े हुए भोगो को (नो पडिआयइ) फिर स्वीकार करने की इच्छा नही करता (स) वह (भिक्खू) शास्त्रोक्त विधि से तप द्वारा पूर्व सचित कर्मों को भेदन करने वाला भिक्षु कहलाता है ॥१॥

पुढवि न खणे न खणावए,
सीओदग न पिए न पियावए ।
अगणि सत्थ जहा सुनिसिय,
त न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥२॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (न खणे) स्वय नही खोदता (न खणावए) दूसरो से नही खुदवाता और खोदने वालो की अनुमोदना भी नही करता ।

जो (सीओदग) सचित्त जल को (न पिए) स्वय नही पीता (न पियावए) दूसरों को नही पिलाता-और पीने वालो की अनुमोदना भी नही करता-(सत्थ जहा सुनिसिय) खड्गादि तीक्ष्ण शस्त्र के समान (त अगणि) अग्नि को (न जले) स्वय नही जलाता (न जलावए) दूसरो से नही जलवाता और जलाने वालो की अनुमोदना भो नही करता अर्थात् जो पृथ्वीकाय, अप्पकाय, तेउकाय, को तोन करण तोन योग से हिंसा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कह-लाता है ॥२॥

अनिलेण न वीए न वीयावए,
हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।
बीयाणि सया विवज्जयतो,
सच्चित्त नाहारए जे स भिक्खू ।३॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (अनिलेण) पखे आदि से (न वोए) स्वय हवा नही करता (न वोयावए) दूसरो से हवा नही करवाता और हवा करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (हरियाणि) तरु, लता आदि वनस्पतिकाय का (न छिंदे) छेदन नही करता (न छिंदावए) दूसरो से छेदन नही करवाता और छेदन करने वालो को अनुमोदना भी नही करता और यदि (बीयाणि) मार्ग मे सचित्त बीच आदि पडे हो तो उन्हे (विवज्जयतो) वर्जकर बचाकर चलता है और जो (सया) कभी भी (सच्चित्तं) सचित्त वस्तु का (नाहारए) आहार नही करता एव न दूसरो को कराता है और सचित्त वस्तु का आहार करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कह-लाता है ॥३॥

वहण तसथावराण होइ, पुढवीतणकट्ठ निस्सियाण ।
तम्हा उद्देसिय न भुंजे, नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू ।४।

अन्वयार्थः - (जे) जो (उद्देसिय) ×औद्देशिक (न भुंजे) नही भोगता (न पए) जो स्वय अन्नादि को नही पकाता (नो वि पयावए) न दूसरो से पकवाता है और पकाने वालो की अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है (तम्हा) क्योंकि भोजन पकाने से (पुढवीतण कट्ठनिस्सियाण) पृथ्वी, तृण और काष्ठ के आश्रय मे रहे हुए (तसथावराण-ण) त्रस और स्थावर जीवों की (वहण) हिंसा (होइ) होती है-इसलिए भिक्षु ऐसी प्रवृत्ति नही करता ।४।

रोइअ नायपुत्तवयणे, अत्तसमे मन्निज्ज छप्पि काए ।
पच य फासे महव्वयाइ, पचासवसवरे जे स भिक्खू ॥५॥

अन्वयार्थः (जे) जो (नायपुत्तवयणे) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो को (रोइअ) श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके (छप्पिकाए) छ जीव निकाय को (अत्तसमे) अपनी आत्मा के समान (मन्निज्ज) मानता है (पच) पाच (महव्वयाइ) महाव्रतो की (फासे) सम्यक् आराधना करता है (य) और (पचासवसवरे) पाच आश्रवो का निरोध करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।५॥

चत्तारि वमे सया कसाए,
धुवजोगी हविज्ज बुद्धवयणे ।
अहणे निज्जायरूवरयए,
गिहिजोग परिवज्जए ज स भिक्खू ॥६॥

× किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधा कर्म और यदि दूसर साधु ले तो औद्देशिक ।

अन्वयार्थः— (जे) जो (चत्तारि) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो (कसाए) कषायो को (वमे) त्यागता है (बुद्धवयणे) तीर्थंकर देवो के प्रवचनो मे (सया। सदा (धुवजोगी) ध्रुवयोगी-अटल श्रद्धा रखने वाला (हविज्ज) होता है (अहणे निज्जायरूवरयए) जिसने गाय, भैस आदि चतुष्पदादि धन तथा सोना-चांदी आदि सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है और (गिहिजोग) जो गृहस्थो के साथ अति परिचय (परिवज्जए) नही रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।६।।

सम्मद्दिट्ठीसया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे सजमे य ।
तवसा धुणइ पुराणपावग मणवयकायसुसवुड जे स भिक्खू ।७।

अन्वयार्थः— (जे) जो (सम्मद्दिट्ठी) सम्यग् दृष्टि है (य) और (नाणे तवे सजमे) ज्ञान, तप, सयम के विषय मे जो (सया) सदा (हु) पूर्ण (अमूढे) श्रद्धा एव दृढ विश्वास (अत्थि) रखता है (मण वय काय सुसवुडे) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से युक्त है और जो (तवसा) तपस्या द्वारा (पुराणपावग) पूर्वोपार्जित पापकर्मों को (धुणइ) नष्ट करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥७॥

तहेव असण पाणग वा,
विविह खाइमं साइम लभित्ता ।
होही अट्ठो सुए परे वा,
त न निहे न निहावए जे स भिक्खू ।८।

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (ज) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम)

खादिम (वा) और (साइमं) स्वादिम आदि पदार्थों को (लभित्ता) प्राप्त करके (सुए) कल (वा) अथवा (परे) परसो या और कभी (अट्ठो होही) यह पदार्थ काम आयेगा ऐसा विचार कर जो (त) उसको (न निहे) सग्रह कर बासी नही रखता (न निहावए) दूसरों से बासी नही रखवाता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥८॥

तहेव आसण पाणगं वा,
विविह खाइम साइम लभित्ता।
छंदिय साहम्मियाण भुंजे,
भुञ्चा सज्झायरए जे स भिक्खू ॥९॥

अन्वयार्थः—(तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थों को (लभित्ता) प्राप्त करके फिर (साहम्मियाण) अपने स्वधर्मी साधुओ को (छंदिय) बुलाकर (भुजे) भोजन करता है और (भुञ्चा) भोजन करने के बाद (सज्झायरए) स्वाध्यायादि में रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥९॥

न य वुग्गहिय कह कहिज्जा,
न य कुप्पे निहुइदिए पसते।
सजमे धुव जोगेण जुत्ते,
उवसते अविहेडए जे स भिक्खू ॥१०॥

अन्वयार्थः - (जे) जो (वुग्गहिय) कलह उत्पन्न करने वाली (कह) कथा (न य कहिज्जा) नही कहता (न य कुप्पे) किसी पर क्रोध नही करता (निहुइंदिए) इन्द्रियो को

सदा वश मे रखता है (पसते) मन को शान्त रखता है (संजमे धुव जोगेण जुत्तो-सजमधुवजोगजुत्तो) जो सयम मे सदा तल्लीन रहता है (उवसते) कष्ट पडने पर भी जो आकुल-व्याकुल नही होता (अविहेडए) और कालोकाल करने योग्य पडिलेहणादि कार्यो मे जो उपेक्षा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१०॥

जो सहइ उ ग मकटए, अक्कोसपहारतज्जणाओ य ।
भयभेरवसद्दसप्पहासे, समसुह दुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥११॥

अन्वयार्थः—(जो) जो (गामकटए) श्रोत्रादि इन्द्रियो को काटे के समान दुःख उत्पन्न करने वाले (अक्कोसपहार-तज्जणाओ) कठोर वचन, प्रहार और ताडना-तर्जनादि को (उ-हु) समभावपूर्वक (सहइ) सहन कर लेता है (य) और (भयभेरवसद्दसप्पहासे) जहाँ अत्यन्त भय को उत्पन्न करने वाले भूत बेताल आदि के भयकर शब्द होते हो, ऐसे स्थानो मे भी (जे) जो निर्भय होकर ध्यानादि मे निश्चल बना रहता है (य) और (समसुह दुक्खसहे) जो सुख-दुःख को समान समझ कर समभाव रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥११॥

पडिम पडिवज्जिया मसाणे,
नो भीयए भयभेरवाइ दिस्स ।
विविहगुणतवोरए य निच्च,
न सरीरचाभिकखए जे स भिक्खू ।१२।

अन्वयार्थ— (जे) जो (निच्च) सदा (विविहगुण-तवोरए) नाना प्रकार के मूल गुण उत्तर गुणो मे रत रहता

है (य) और (मसाणे) और श्मशान भूमि मे (पडिम) मासिकी आदि भिक्षु पडिमा को (पडिवज्जिया) स्वीकार करके ध्यान मे खडा हुआ जो मुनि (भयभेरवाइ) भूत बेताल आदि के भयकर रूपो का (दिस्स) देखकर एव, भयंकर शब्दो को सुनकर भी (नो भीयए) नही डरता है (च) तथा (सरीर) जो शरीर पर भी (न अभिकखए) ममत्व भाव नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१२॥

असइ वोसट्ठचत्तदेहे,
अक्कुट्ठे द हए लूसिए वा ।
पुढविसमे मुणी हविज्जा,
अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू ॥१३॥

अन्वयार्थ— (जे) जो (मुणी) मुनि (असइ) कभी भी (वोसट्ठचत्तदेहे) शरीर की विभूषा नही करता एव शरीर पर ममत्व भी नही रखता (अक्कुट्ठे) कठोर वचनो द्वारा आक्षेप किया जाने पर (व) अथवा (हए) लकड़ी आदि से पीटे जाने पर (वा) अथवा (लूसिए) शस्त्रादि से छेदन-भेदन किये जाने पर भी जो (पुढविसमे हविज्जा) पृथ्वी के समान समभावपूर्वक सहन कर लेता है (अनियाणे) जो किसी तरह का नियाणा नही करता तथा (अकोउहल्ले) नाच, गान आदि मे रुचि नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१३॥

अभिभूय काएण परीसहाइ,
समुद्धरे जाइपहाउ अप्पयं ।
विइत्तु जाईमरणं महब्भय,
तवे रए सामणिए जे स भिक्खू ॥१४॥

अन्वयार्थः—(जे) जो (काएण) शरीर से (परीषहाइ) परीषहो को (अभिभूय) जीतकर (जाइपहाउ) ससार-समुद्र से (अप्पय) अपनी आत्मा का (ममुद्धरे) उद्धार कर लेता है तथा (जाईमरणं) जन्म-मरण को (महब्भय) महा भयकारी एव अनन्त दुखो का कारण (विइत्तु) जानकर (सामणिए) सयम और (तवे) तप मे (रए) रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१४॥

हत्थसजए पायसजए,
वायसजए सजइदिए ।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
सुत्तत्थ च विआणइ जे स भिक्खू ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (हत्थसजए) हाथों से सयत है (पायसजए) पैरो से सयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवो को कछुए की तरह सकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक कार्य करता है (वायसजए) जो वचन से मयत है अर्थात् किसी को सावद्य एव परपीडाकारी वचन नही कहता तथा (सजइदिए) जो सब इन्द्रियो को वश मे रखता है (अज्झप्परए) अध्यात्म रस मे एव धर्मध्यान, शुक्लध्यान मे रत रहता है (सुसमाहि अप्पा) जो सयम मे अपनी आत्मा को समाधिवत रखता है (च) और (सुत्तत्थं) जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से (विआणइ) जानता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कह-जाता है ॥१५॥

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे,
अन्नायउछ पुलनिप्पुलाए ।

कयविक्कयसंनिहिओ विरए,
सव्वसगावगए य जे स भिक्खू ॥१६॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (उवहिम्मि) वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि धर्मोपकरणो मे (अमुच्छिए) मूर्च्छाभाव नही रखता (अगिद्धे) जो किसी भी पदार्थ में गृद्धिभाव नही रखता एव सासारिक प्रतिबन्धो से अलग रहता है (अन्नायउछ) भिक्षा एव उपकरणादि भी अज्ञात घरो से मागकर लाता है (पुलनिप्पुलाए) सयम को दूषित करने वाले दोषो का कदापि सेवन नही करता (कयविक्कयसनिहिओ विरए) खरीदना, बेचना, सग्रह करना आदि व्यापारिक कार्यों से जो सदा विरक्त रहता है (य) और (सव्वसगावगए) जो सब सग एव आसक्तियो को छोड़ देता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥ १६॥

अलोल भिक्खू न रसेसु गिज्झे,
उछ चरे जीविय नाभिकखे।
इड्ढि च सक्कारण पूयण च,
चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥१७॥

अन्वयार्थः – (जे) जो (भिक्खू) साधु (अलोल-अलोलु) लोलुपता से रहित होकर रसेसु) किसी भी प्रकार के रसो मे (न गिज्झे) आसक्त नही होता (उछ) अज्ञात घरो से (चरे) गोचरी करता है अर्थात् अनेक घरो से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी सयम यात्रा का निर्वाह करता है (जीविय नाभिकखे-कखो) मरणान्त कष्ट पडने पर भी जो असयम जीवन की इच्छा नही करना (च) और जो (इड्ढि) ऋद्धि (सक्कारणपूयण च) सत्कार और पूजा-

प्रतिष्ठा को (चए) नही चाहता और (अणिहे) जो माया-कपट रहित होकर (ठिअप्पा) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।१७।

न पर वइज्जासि अय कुसीले,
जेण च कुप्पिज्ज न त वइज्जा ।
जाणिय पत्तेय पुण्ण पाव,
अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

अन्वयार्थः—(जे) जो (पर) किसी भी दूसरे व्यक्ति को (अयं) यह (कुसीले) दुराचारी है ऐसा (न वइज्जासि) वचन नही बोलता (च) और (जेण-जेण) ऐसे वचन जिन्हे सुनकर (कुप्पिज्ज) दूसरो को क्रोध उत्पन्न हो (त) वैसे वचन (न वइज्जा) कभी नही बोलता (पत्तेयं) प्रत्येक जीव (पुण्णपाव) अपने अपने पुण्य—पाप-शुभाशुभा कर्मो के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं (जाणिय) ऐसा जानकर जो अपने ही दोषो को दूर करता है तथा (अत्ताण) अपने आपको (न समुक्कसे) सब से बढकर एव उत्कृष्ट मानकर जो अभिमान नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१८॥

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते,
न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता,
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥१९॥

अन्वयार्थः— (जे) जो (न जाइमत्ते) जाति का मद नही करता (न रूवमत्ते) रूप का मद नही करता (न

लाभमत्ते) लाभ का मद नही करता (य) और (न सुणए मत्ते) श्रुत-ज्ञान का मद नही करता (सव्वाणि) इस प्रकार सब (मयाणि) मदों को (विवज्जइत्ता) छोडकर (धम्मज्झाणरए) धर्मध्यान में सदा लोन रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१६॥

पवेयए अज्जपयं महामुणी,
धम्मे ठिओ ठावयई पर पि।
निक्खम्म वज्जिज्ज कुसीललिगं,
न यावि हासं कुहए जे स भिक्खू ॥२०॥

अन्वयार्थ.—(जे) जो (महामुणी) महामुनि (अज्जपय) परोपकार की दृष्टि से शुद्ध एव सच्चे धर्म का (पवेयए) उपदेश देता है (धम्मे) जो स्वय अपनी आत्मा को सद्धर्म में (ठिओ) स्थिर करके (पर पि) दूसरों को भी (ठावयई) धर्म मे स्थिर करता है (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (कुसीललिगं) आरम्भ-समारम्भ रूप गृहस्थ की क्रिया को एव कुसाधुओ के सग को जो (वज्जिज्ज) छोड देता है (यावि) और (न हास कुहए) हास्य को उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाएं एव ठट्ठा मसकरी आदि नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥२०॥

त देहवासं असुइ असासय,
सया चए निच्चहिअट्ठिअप्पा।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बधणं,
उवेइ भिक्खू अपुणागम गइ ॥२१॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ— (निच्चहिअट्ठि अप्पा) मोक्ष रूपी हित एव कल्याण मार्ग में सदा अपनी आत्मा को स्थिर रखने

वाला (भिक्खू) साधु (त) इस (असुइ) अपवित्र और (असासयं) अशाश्वत (देहवासं) शरीर को (सया) सदा के लिए (चए) छोडकर तथा (जाई मरणस्स) जन्म-मरण के (बधणं) बन्धन को (छिदित्तु) काट कर (अपुणागम) पुनरागमन रहित अर्थात् जहाँ जाकर फिर ससार मे लौटना न पडे ऐसी (गइ) सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि-हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर से जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहा है मैंने अपनी वुद्धि से कुछ नही जोड़ा है ॥

रतिवाक्य नामक प्रथम चूलिका

इह खलु भो ! पव्वइएण उत्पन्न दुक्खेणं सजमे अरइसमावन्न चित्तेण ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएण चेव हयरस्सिगयकुसपोयपडागाभूयाइ इमाइ अट्ठारस ठाणाइ सम्म सपडिलेहियव्वाइ भवति ।

अन्वयार्थः— गुरु महाराज कहते हैं कि-(भो) हे शिष्यो ! (पव्वइएण) दीक्षा लेने के बाद (उत्पन्न-दुक्खेणं) किसी समय शारीरिक एव मानसिक कष्ट आ पड़ने पर यदि कदाचित् (सजमे) सयम मे (अरइसमावन्न चित्तेणं) अरति उत्पन्न हो जाय अर्थात् सयम मार्ग मे चित्त का प्रेम न रहे और (ओहाणुप्पेहिणा) सयम छोडकर वापिस गृहस्थाश्रम मे चले जाने की इच्छा होती हो तो (अणोहाइएणं चेव) सयम छोड़ने के पहले साधु को (इह खलु इमाइ) इन (अट्ठारस ठाणाइं) अठारह स्थानो का (सम्म)

खूब अच्छी तरह से (सपडिलेहियव्वाइ भवति) विचार करना चाहिये क्योंकि (हयरस्सि गयकुस पोयपडागाभूयाइ) जिस प्रक र लगाम से चचल घोडा वश में आ जाता है, अकुश से मदोन्मत्त हाथी वश मे आ जाता है, मार्ग भूलकर समुद्र में इधर-उधर गोते खाती हुई नाव पतवार द्वारा ठीक रास्ते पर आ जाती है, उसी प्रकार आगे कहे जाने वाले अठारह स्थानो पर विचार करने से चचल एव डावाँडोल बना हुआ साधु का चित्त भी सयम मे पुनः स्थिर हो जाता है ।।

तजहा-ह भो ! १ दुस्समाए दुप्पजीवो, २ लहुसगा इत्तरिया गिहीण कामभोगा, ३ भुज्जो य साइबहुला मणुस्सा, ४ इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सई, ५ ओम जणपुरक्कारे, ६ वतस्स य पडिआयण, ७ अहरगइवासोवसपया, ८ दुल्लहे खलु भो ! गिहीण धम्मे गिहवासमज्झे वसताण, ९ आयके से वहाय होइ, १० संकप्पे से वहाय होइ, ११ सोवक्केसे गिहिवासे निरुवक्केसे परियाए १२ बवे गिहिवासे मुक्खे परियाए, १३ सावज्जे गिहिवासे अणवज्जे परियाए, १४ बहुसाहारणा गिहीण कामभोगा, १५ पत्तेय पुण्णपाव, १६ अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्ग जल बिंदु चचले, १७ बहु च खलु भो ! पाव कम्मं पगड, १८ पावाणं च खलु भो ! कडाण कम्माण पुव्वि दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकताण वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता । अट्ठारसम पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो ।

अन्वयार्थः— (तंजहा) वे अठारह स्थान इस प्रकार हैं :—१ (हभो) अपनी आत्मा को संबोधित कर इस प्रकार

विचार करना चाहिए कि-हे आत्मन् (दुस्समाए) इस दुषम काल का जीवन ही (दुप्पजीवी) दुःखमय है। २ इस दुषम काल के अन्दर (गिहीण) गृहस्थ लोगो के (कामभोगा) कामभोग (लहुसगा) तुच्छ और (इत्तरिया) अल्पकालीन हैं। ३ (भुज्जो य और (मणुस्सा) इस दुषम काल के बहुत से मनुष्य (साइबहुला-सायबहुला) बड कपटी एव मायावी होते हैं। ४ (मे) मुझे (दुक्खे) जो दुख उत्पन्न हुआ है (इमेय) वह (न चिरकालोवट्ठाई) बहुत काल तक नही रहेगा। ५ (ओमजणपुरक्कारे) सयम छोडकर गृहस्थाश्रम मे जाने वालो को नीच से नीच पुरुषो की खुशामद एव सेवा करनी पडती है। ६ (य) और (वतस्स) सयम को छोडकर गृहस्थाश्रम में जाने से जिन पदार्थों का एक बार वमन त्याग कर दिया है (पडिआयणं) उन्ही का फिर सेवन करना पडेगा। ७ (अहरगइवासोवसपया) संयम छोड़कर गृहस्थाश्रम में जाना मानो साक्षात् नरक गति मे जाने की तैयारी करने के समान है। ८ (भो) हे आत्मन् ! (गिहवास मज्झे) गृहस्थाश्रम रूप पाश मे (वसताण) जकडे हुए (गिहीण) गृहस्थों के लिए (धम्मे) धर्म का पालन करना (खलु दुल्लहे-दुल्लभे) निश्चय ही कठिन है। ९ (सकप्पे) यह शरीर रोगो का घर है है इसमें अचानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं (से) वे रोग तत्काल (वहाय होइ) मृत्यु के मुख मे पहुचा देते हैं उस समय धर्म के सिवाय कोई भी इस जीव का सहायक नही होता। १० (सकप्पे) इष्ट वियोग और अनिष्ट सयाग से सदा संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं (से) इससे उसका (वहाय) अहित (होइ) होता है और आर्त्तध्यान रौद्रध्यान बना रहता है।

११ (गिहवासे) गृहस्थाश्रम (सोवक्केसे) क्लेशयुक्त है और (परियाए) सजम (निरुवक्केसे) क्लेशरहित है क्योकि सच्ची शाति त्याग मे ही है। १२ (गिहवासे) गृहस्थावास (बधे) बन्धन रूप है-कर्मों के बन्धन का स्थान है और (परियाए) सयम (मुक्खे) मोक्षरूप है अर्थात् कर्मों से छुडाने वाला है क्योकि त्याग में ही सच्ची मुक्ति है। १३ (गिहवासे) गृहस्थावास (सावज्जे) पाप स्थान है और (परियाए) सयम (अणवज्जे) निष्पाप एव पवित्र है। १४ (गिहीणं) गृहस्थो के (कामभोगा) कामभोग (बहुसाहारणा) तुच्छ एव साधारण हैं। १५ (पत्तेया) प्रत्येक प्राणी के (पुण्णपाव) पुण्य-पाप अलग अलग हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दु ख भोगते हैं। १६ (भो) हे आत्मन्! (मणुयाण) मनुष्यो का (जीविए) जीवन (कुसग्गजलबिंदु चचले) कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जलबिंदु के समान अति चचल है (अणिच्चे खलु) एव क्षणिक है। १७ (च) और (भो) हे आत्मन्! (खलु) निश्चय ही मैंने (बहु) बहुत (पाव कम्मं) पाप कर्म (पगड) किये हैं अथवा मेरे बहुत ही प्रबल पापकर्मो का उदय है इसीलिए सयम छोड़ देने के निन्दनीय विचार मेरे हृदय में उत्पन्न हो रहे हैं। १८ (च) और (भो) हे आत्मन्! (दुच्चिन्नाण) दुष्ट भावो से (दुप्पडिकताण) तथा मिथ्यात्व आदि से (कडाण) उपार्जन किये हुए (पुव्वि पावाणं कम्माणं) पहले के पाप कर्मों के फल को (वेइत्ता) भोगने के बाद ही मोक्ष होता है किन्तु (अवेइत्ता) कर्मों का फल भोगे बिना (नत्थि) मोक्ष नही होता (वा) अथवा (तवसा) तप द्वारा (झोसइत्ता) कर्मों का क्षय कर देने पर ही मोक्ष

होता है (अट्ठारसम) यह अठारहवां (पय) पद (भवइ) है (अ) और (इत्थ) इन अठारह विषयों पर (सिलोगो) श्लोक भी (भवइ) हैं, वे इस प्रकार हैं —

जया य चयई धम्म, अणज्जो भोगकारणा ।
से तत्थ मुच्छिए वाले, आयइ नावबुज्झइ ॥१॥

अन्वयार्थः— (जया य) जब (अणज्जो) कोई अनार्य पुरुष (भोगकारणा) भोगो की इच्छा से (धम्म) सयम को (चयई) छोडता है तब (तत्थ) कामभोगो मे (मुच्छिए) आसक्त बना हुआ (से) वह (वाले) अज्ञानी (आयइ) भविष्यत् काल के लिए (नावबुज्झइ) जरा भी विचार नही करता ॥१॥

जया ओहाविओ होइ, इदो वा पडिओ छम ।
सव्व धम्मपरिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥२॥

अन्वयार्थ— (वा) जिस प्रकार स्वर्गलोक से चवकर (छमं) पृथ्वी पर (पडिओ) उत्पन्न होनें वाला (इदो) इन्द्र अपनी पूर्व ऋद्धि को याद कर पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (जया) जब कोई साधु (ओहावियो) सयम से भ्रष्ट होकर (सव्वधम्मपरिब्भट्ठो) सब धर्मो से भ्रष्ट (होइ) हो जाता है तब (स) वह (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥२॥

जया य वदिमो होइ, पच्छा होइ अवदिमो ।
देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ ॥३॥

अन्वयार्थ— (जया) जब साधु संयम मे रहता है तब तो (वदिमो) वह सब लोगो का वन्दनीय (होइ)

होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद वही (अवदिमो) अवन्दनीय (होइ) हो जाता है (ठाणा चुया देवया व) जिस प्रकार इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चात्ताप करती है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥३॥

जया य पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो ।
राया व रज्जपब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥४॥

अन्वयार्थः— (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (पूइमो) सब लोगो से पूजनीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद (अपूइमो) अपूजनीय (होइ) हो जाता है (रज्जपब्भट्ठो राया व) जिस प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (स) वह साधु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥४॥

जया य माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो ।
सिट्ठिव्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पइ ॥५॥

अन्वयार्थः — (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (माणिमो) सब लोगो का माननीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (अमाणिमो) अमाननीय (होइ) हो जाता है (कब्बडे) जिस प्रकार छोटे से गाव मे (छूढो) अनिच्छापूर्वक रखा हुआ (सिट्ठिव्व) सेठ पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु भी (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥५॥

जया य थेरओ होइ, समइक्कंत जुव्वणो ।
मच्छुव्व गल गिलित्ता, स पच्छा परितप्पइ ॥६॥

अन्वयार्थः— (मच्छुव्व) जिस प्रकार लोहे के काटे पर लगे हुए मास को खाने के लिए मच्छली उस पर झपटती है किन्तु (गल गिलित्ता) गले मे काटा फस जाने के कारण पश्चात्ताप करती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है इसी प्रकार (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हुआ साधु (समइक्कत जुवणो) यौवन अवस्था के बीत जाने पर (जयाय) जब (थेरओ) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब (स) वह (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥६॥

भावार्थ.— जिस प्रकार मछली न तो उस लोहे के काटे को गले से नीचे उतार सकती है और न गले से बाहिर निकाल सकती है उसी प्रकार वह सयमभ्रष्ट वृद्ध साधु न तो भोगो को भोग सकता है और न उन्हें छोड सकता है । यो ही कष्टमय जीवन समाप्त कर मृत्यु के मुख से पहुच जाता है ॥

जया य कुकुडुंवस्स, कुतत्तीहिं विहम्मइ ।
हत्थी व वधणे वद्धो, स पच्छा परितप्पइ ।७॥

अन्वयार्थः— विषय भोगों के झूठे लालच मे फस कर संयम से पतित होने वाले साधु को (जयाय) जब (कुकुडुंवस्स) अनुकूल परिवार एवं इष्ट सयोगो की प्राप्ति नही होती तब (कुतत्तीहि) वह आर्त्तरौद्रध्यान करता हुआ अनेक प्रकार की चिन्ताओं से (विहम्मइ) चिन्तित रहता है और (वधणे) वन्धन मे (वद्धो) बधे हुए (हत्थी व) हाथी के समान (स) वह (पच्छा) पीछे बार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥७॥

पुत्तदारपरीकिण्णो, मोहसंताणसंतओ ।
पकोसन्नो जहा नागो, स पच्छा परितप्पइ ॥८॥

अन्वयार्थः— (पुत्तदारपरीकिण्णो) पुत्र-स्त्री आदि से घिरा हुआ और (मोहसताण सतओ) मोहपाश मे फसा हुआ (स) वह संयम भ्रष्टसाधु (पकोसन्नो) कीचड मे फसे हुए (जहा नागो) हाथो के समान (पच्छा) पीछे बार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥८॥

अज्ज अह गणी हुतो, भाविअप्पा बहुस्सुओ ।
जइऽह रमतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए ॥९॥

अन्वयार्थः— सयम से पतित हुआ साधु इस प्रकार विचार करता है कि (जइऽह) यदि मैं साधुपना न छोड़ता और (भाविअप्पा) भावितात्मा होकर (जिणदेसिए) जिनेश्वर देवो द्वारा प्ररूपित (सामण्णे परियाए) साधु धर्म का (रमतो) पालन करता हुआ (बहुस्सुओ) शास्त्रो का अभ्यास करता रहता तो (अज्ज) आज (अह) मैं (गणी) आचार्य पद पर (हुतो) सुशोभित होता ॥९॥

देवलोगसमाणो य परियाओ महेसिण ।
रयाण अरयाण च, महानरयसारिसो ॥१०॥

अन्वयार्थः— (महेसिण) जो महर्षि (रयाण) सयम मे रत रहते हैं उनके लिए (परियाओ) सयम (देवलोग-समाणो य) देवलोक के सुखो के समान आनन्ददायक है (च) किन्तु (अरयाण) सयम मे रुचि न रखने वालों को (महानरय सारिसो) सयम नरक के समान दुखदायी प्रतीत होता है ॥१०॥

अमरोवमं जाणिय सुक्खमुत्तमं,
रयाण परियाइ तहाऽरयाणं ।
निरश्रोवम जाणिय दुक्खमुत्तम,
रमिज्ज तम्हा परियाइ पडिए ॥११॥

अन्वयार्थः—(परियाइ) सयम मे (रयाण) रत रहने वाले महापुरुषों के लिए सयम (अवरोवम) देवलोक के (उत्तम) श्रेष्ठ (सुक्ख) सुखो के समान आनन्ददायक होता है (जाणिय) ऐसा जानकर (तहा) तथा (अरयाण) सयम मे रुचि रखने वालो को वही सयम (निरश्रोवम) नरक के (उत्तम) घोर (दुक्ख) दु खो के समान दुखदायी प्रतीत होता है (तम्हा) ऐसा (जाणिय) जानकर (पडिए) बुद्धिमान् साधु को (परियाइ) सयम मार्ग मे ही (रमिज्ज) रमण करना चाहिए ॥११॥

घम्माउ भट्ठ सिरिश्रो अवेय,
जन्नग्गिविज्झाअमिवऽप्पत्तेय ।
हीलन्ति ण दुव्विहिय कुसीला,
दाढुड्ढिय घोरविस व नाग ।१२॥

अन्वयार्थः - (जन्नग्गि) यज्ञ की अग्नि-जब तक जलती रहती है तब तक उसे पवित्र समझ कर अग्निहोत्री ब्राह्मण उसमे घृतादि डालते हैं और प्रणाम करते हैं किन्तु (विज्झाअ) जब वह बुझकर (अप्पत्तेय) तेज रहित हो जाती है-तब उसकी राख को बाहर फेंक देते हैं तथा (घोर-विस व) जब तक साँप के मुह मे भयकर विप को धारण करने वाली दाढें मौजूद रहती हैं तब तक सब लोग उससे डरते हैं किन्तु (दाढुड्ढिय) जब उसकी वे दाढें मदारी द्वारा

निकाल दी जाती तब उससे कोई नही डरता प्रत्युत: छोटे-छोटे बच्चे भी नाग) उस सर्प को छेडते हैं और अनेक प्रकार का कष्ट पहुचाते हैं। (इव) इसी प्रकार जब तक साधु सयम का यथावत् पालन करता हुआ तपरूपी तेज से दीप्त रहता है तब तक सब लोग उसकी विनय-भक्ति एव सत्कार-सम्मान करते हैं किन्तु जब वही साधु (धम्माउ) सयम से (भट्ठ) भ्रष्ट हो जाता है और (सिरिओ) तप-रूपी लक्ष्मी से (अवेय-ववेयं) रहित होकर (दुव्विहिय) अयोग्य आचरण करने लग जाता है तब (कुसीला) आचार-हीन सामान्य लोग भी (ण) उसकी (हीलति) अवहेलना एव तिरस्कार करने लग जाते हैं ॥१२॥

इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती,
दुन्नामधिज्ज च पिहुज्जणम्मि ।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो,
सभिन्नवित्तस्स य हिट्ठओ गई ॥१३॥

अन्वयार्थः – (धम्माउ) सयम धर्म से (चुयस्स) पतित (अहम्मसेविणो) अधर्म का सेवन करने वाला (सभिन्न वित्तस्स) ग्रहण किये हुए व्रतो को खण्डित करने वाला साधु (इहेव) इस लोक मे (अधम्मो) अधर्म (अयसो) अप-यश (य) और (अकित्ती) अकीर्ति को प्राप्त होता है (च) और (पिहुज्जणम्मि) साधारण लोगो मे भी (दुन्नामधिज्ज) वदनामी एव तिरस्कार को प्राप्त होता है तथा (हिट्ठओ गई) परलोक मे नरकादि नीच गतियों मे उत्पन्न होकर असह्य दु:ख भोगता है ॥१३॥

भुंजित्तु भोगाइं पसज्भचेयसा,
तहाविहं कट्टु असंजम वहु ।

गइं च गच्छे अणभिज्झिय दुहं,
बोही य से नो सुलहा पुणो पुणो ॥१४॥

अन्वयार्थः— (पसज्झचेयसा) तीव्र लालसा एवं गृद्धिभावपूर्वक (भोगाइं) भोगों को (भुंजित्तु) भोगकर (च) तथा (बहुं) बहुत से (तहाविहं असंजमं) असंयमपूर्ण निन्दनीय कार्यों का (कट्टु) आचरण करके जब वह संयम-भ्रष्ट साधु कालधर्म को प्राप्त होता है तब (अणभिज्झियं-अणहिज्जियं) अनिष्ट (गइं) नरकादि गतियों में (गच्छे) जाकर (दुहं) अनेक दुःख भोगता है (य) और (से) उसे (पुणो पुणो) अनेक भवों में भी (बोही) बोधबीज समकित एवं जिनधर्म की प्राप्ति होना (नो सुलहा) सुलभ नहीं है ॥१४॥

इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो,
दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो।
पलिओवमं झिज्झइ सागरोवमं,
किमंग पुण मज्झ इमं मणोदुहं ॥१५॥

अन्वयार्थ— संयम में आने वाले आकस्मिक कष्टों से घबरा कर संयम छोड़ने की इच्छा करने वाले साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (नेरइयस्स) नरकों में अनेक बार उत्पन्न होकर (इमस्स जंतुणो) मेरे इस जीव ने (किलेसवत्तिणो) अनेक क्लेश एवं (दुहोवणियस्स) असह्य दुःख सहन किये हैं और (पलिओवमं) वहाँ की पल्योपम और (सागरोवमं) सागरोपम जैसी दुःखपूर्ण लम्बी आयु को भी (झिज्झइ-झिज्जइ) समाप्त कर वहाँ से निकल आया है (ता पुण) तो फिर (मज्झ) मेरा (इमं) यह (मणोदुहं)

चारित्र विषयक मानसिक दु.ख तो (किमग) है ही क्या चीज ? अर्थात् नरको मे पल्योपम तथा सागरोपम की लम्बी आयुष्य तक निरन्तर मिलने वाला अनन्त दु ख कहाँ और इस सयमी जीवन मे कभी-कभी आया हुआ थोडा-सा आकस्मिक दु.ख कहाँ ? इन दोनो मे तो महान् अन्तर है। ऐसा सोचकर साधु को समभावपूर्वक वह कष्ट सहन कर लेना चाहिए ।

न मे चिर दुक्खमिण भविस्सइ,
असासया भोगपिवास जतुणो ।
न चे सरीरेण इमेणऽविस्सइ,
अविस्सई जीवियपज्जवेण मे ॥१६॥

अन्वयार्थः— दु ख से घबरा कर सयम छोडने वाले साधु को ऐसा विचार करना चाहिए कि (मे) मेरा (इण) यह (दुक्ख) दु ख (चिर) बहुत काल तक (न भविस्सइ) नही रहेगा-भोग भोगने की लालसा से सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को विचार करना चाहिए कि-(जतुणो) जीव की (भोग पिवास) भोग पिपासा-विषय वासना (असासया) अशाश्वत है (चे) यदि यह विषय-वासना (इमेण) इस (सरीरेण) शरीर में शक्ति रहते (न अविस्सइ) नष्ट न होगी तो (मे) मेरी वृद्धावस्था आने पर अथवा (जीवियपज्जवेण) मृत्यु आने पर तो (अविस्सई) अवश्य नष्ट हो ही जायगी अर्थात् जब यह शरीर ही अनित्य है तो विषयवासना नित्य किस प्रकार हो सकती है ? ॥१६॥

जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देह न हु धम्मसासणं ।

त तारिस नो पइलति इदिया,
उविंतवाया व सुदसण गिरि ॥१७॥

अन्वयार्थ — (एव) उपरोक्त रीति से विचार करने से (जस्स) जिसकी (अप्पा) आत्मा धर्म पर (उ) इतनी (निच्छिओ) दृढ (हविज्ज) हो जाती है कि अवसर पडने पर वह धर्म पर (देह) अपने शरीर को (चइज्ज) प्रसन्नता-पूर्वक न्यौछावर कर देता है (हु) किन्तु (न धम्मसासण) धर्म का त्याग नही करता। (व) जिस प्रकार (उविंतवाया उविंतिवाया) प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु भी (सुदसणं गिरि) सुमेरु पर्वत को चलित नही कर सकती उसी प्रकार (इदिया) चचल इन्द्रियाँ भी (तारिस) मेरु पर्वत के समान दृढ (त) उस पूर्वोक्त मुनि को (नो पइलति पईलिति) सयम मार्ग से विचलित नही कर सकती ॥१७॥

इच्चेव सपस्सिय बुद्धिम नरो,
आय उवाय विविह विआणिया।
काएण वाया अदु माणसेण,
तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिज्जासि ॥१८॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थः—(बुद्धिमं) बुद्धिमान् (नरो) साधु (इच्चेव) उपरोक्त सब बातो पर (सपस्सिय) भली प्रकार विचार करके तथा (आय) ज्ञानादि लाभ के (उवाय) उपायो को (विआणिया) जानकर (माणसेणं) मन (वाया) वचन (अदु) और (काएण) काया रूप (त्तिगुत्तिगुत्तो) तीन गुप्तियो से गुप्त होकर (जिणवयण) जिनेश्वर देवो के वचनो पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए सयम का (अहिट्ठिज्जासि) यथा-वत् पालन करे। उपरोक्त अठारह स्थानो पर सम्यक् विचार

करने से सयम से विचलित होता हुआ साधु का मन पुन. सयम मे स्थिर हो जाता है ॥१८॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ॥

विविक्तचर्या नामक दूसरी चूलिका

चूलिय तु पवक्कखामि, सुय केवलिभासिय ।
ज सुणित्तु सुपुण्णाण, धम्मे उप्पज्जए मई ॥१॥

अन्वयार्थ.— (केवलिभासिय) जो सर्वज्ञ प्रभु द्वारा प्ररूपित है (सुय) श्रुतज्ञान रूप है और (ज) जिसे (सुणित्तु) सुनकर (सुपुण्णाण) पुण्यवान् जीवों को (धम्मे) धर्म मे (मई) श्रद्धा (उप्पज्जए) उत्पन्न होती है ऐसी (चूलिय) चूलिका का (पवक्खामि) मैं वर्णन करता हूं ॥१॥

अणुसोयपट्ठिय बहुजणम्मि, पडिसोय लद्ध लक्खेण ।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउ कामेण ।२॥

अन्वयार्थः— जिस प्रकार नदी मे गिरा हुआ काष्ठ प्रवाह के वेग से समुद्र की ओर जाता है उसी प्रकार (बहुजणम्मि) बहुत से मनुष्य (अणुसोय पट्ठिय) विषय प्रवाह के वेग से ससार रूप समुद्र की ओर बहते हैं किन्तु (पडिसोय लद्ध लक्खेण) विषय प्रवाह से छूटकर (होउकामेणं) मोक्ष जाने की इच्छा रखने वाले पुरुषो को चाहिए कि वे (अप्पा) अपनी आत्मा को (पडिसोयमेव) सदा विषय प्रवाह से (दायव्वो) दूर रक्खें ॥२॥

अणुसोयसुहो लोओ, पडिसोओ आसवो सुविहिआणं ।
अणुसोओ ससारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥३॥

अन्वयार्थः— (ससारो) संसार (अणुसोओ) अनुस्रोत के समान है अर्थात् विषय-भोगो की तरफ ले जाने वाला है (तस्स) उस ससार से (उत्तारो) पार होना (पडिसोओ) प्रतिस्रोत कहलाता है (सुविहिआण) साधु पुरुषो का (आसवो) सयम (पडिसोओ) प्रतिस्रोत अर्थात् विषयो से निवृत्ति रूप है इसकी तरफ प्रवृत्ति करना ससारी जोवो के लिए कठिन है क्योकि-(लोओ) ससारी जीव तो (अणु-सोय सुहो) अनुस्रोत मे ही सुख मानते हैं ॥३॥

तम्हा आयार परक्कमेण, सवर समाहि बहुलेण ।
चरिया गुणा य नियमा य, हुति साहूण दट्ठव्वा ॥४॥

अन्वयार्थः— (तम्हा) इसलिए (आयारपरक्कमेण) साधु को ज्ञानादि आचारो का पालन करने मे प्रयत्न करना चाहिए और उसके द्वारा (सवरसमाहि बहुलेण) सवर और समाधि की आराधना करनो चाहिए (य) और (साहूण) साधुओ की (चरिया) जो चर्या (गुणा) गुण (य) और (नियमा) नियम हैं उनका (दट्ठव्वा हुति) यथासमय पूर्ण-रूप से पालन करना चाहिए ॥४॥

अनिएयवासो समुयाणचरिया,
अन्नायउछ पइरिक्कया य ।
अप्पोवही कलह विवज्जणा य,
विहारचरिया इसिण पसत्था ॥५॥

अन्वयार्थ – (अनिएयवासो) अनियतवास-किसी विशेष कारण के विना एक ही स्थान पर अधिक न ठहरना (सनु-याण चरिया) समुदानचर्या-गरीब और श्रीमत सभी के घरों से सामुदानिकी भिक्षा ग्रहण करना एव अनेक घरो से थोडा-

थोड़ा आहार लेना (अन्नाय उंछ) अज्ञात घरों से भिक्षा ग्रहण करना (पइरिक्कया) स्त्री पशु पडग आदि से रहित एकान्त स्थान में रहना (य) और (अप्पोवही) उपधि अर्थात् भण्डोपकरण आदि थोडे रखना (य) तथा (कलह विवज्जणा) किसी के साथ कलह न करना (विहारचरिया) यह विहार-चर्या भगवतो ने (इसिण) मुनियो के लिए (पसत्था) प्रशस्त-कल्याणकारी बतलाई है ॥५॥

आइन्न ओमाण विवज्जणा य, ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे ।
ससट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू, तज्जायससट्ठ जई जइज्जा ॥६॥

अन्वयार्थः— (भिक्खू) गोचरी के लिए जाने वाले (जई) साधु को चाहिए कि (आइन्न ओमाण विवज्जणा) जहाँ जीमनवार हो रहा हो और आने जाने का मार्ग लोगो से खचाखच भरा हो ऐसे भीड-भडक्के वाले स्थान में तथा जहाँ स्वपक्ष और परवक्ष की ओर से अपमान होता हो ऐसे स्थान मे गोचरी न जावे । (ओसन्न दिट्ठाहडभत्तपाणे) साधु को उपयोगपूर्वक शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए (य) और (तज्जायससट्ठ) दाता जो आहारादि दे रहा हो उसी से दाता के हाथ और चमचा आदि खरडे हुए हो तो (ससट्ठकप्पेण) उन्ही खरडे हुए हाथ और चमचा आदि से आहार ग्रहण कर (चरिज्ज) सयम यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरना चाहिए । (जइज्ज) उपरोक्त कल्याण-कारी विहारचर्या भगवतो ने फरमाई है इसलिए इसके पालन करने में मुनियों को पूर्ण यत्न करना चाहिए । ६॥

अमज्जमसासि अमच्छरीया, अभिक्खण निव्विगइ गया य ।
अभिक्खण काउस्सग्गकारी, सज्झाय जोगे पयओ हविज्जा ॥७॥

अन्वयार्थः (अमज्जमसासि) साधु को मद्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि सेवन न करना चाहिए (अमच्छ-रीया) किसी से ईर्ष्या न करनी चाहिए (अभिक्खण) सदा (निव्विगइं गया) विषयो का त्याग करना चाहिए (अभि-क्खण) पुन-पुन. (काउस्सग्गकारी) कायोत्सर्ग करना चाहिए (य) और (सज्झायजोगे) वाचना, पृच्छनादि स्वाध्याय मे (पयओ हविज्जा) सदा लगे रहना चाहिए ॥७॥

न पडिन्नविज्जा सयणासणाइं, सिज्जं तह भत्तपाण ।
गामे कुले वा नगरे व देसे, ममत्तभाव न कहिं पि कुज्जा ॥८॥

अन्वयार्थः—मासकल्पादि की समाप्ति पर जब साधु विहार करने लगे तब (सयणासणाइ) शयन-आसन (सिज्ज) शय्या (निसिज्ज) निषद्या (तहा) तथा (भत्तपाणं) आहार-पानी आदि किसी भी वस्तु के लिए श्रावको से (न पडिन्न-विज्जा) ऐसी प्रतिज्ञा न करावे कि जब मैं वापिस लौटकर आऊ तब ये पदार्थ मुझे ही देना और किसी को मत देना (गामे) गाव मे (वा) अथवा (कुले) कुल में (नगरे) नगर मे (व) अथवा (देसे) देश में (कहिं पि) कही पर भी साधु को (ममत्तभाव) ममत्व भाव (न कुज्जा) न रखना चाहिए यहा तक कि वस्त्र-पात्रादि धर्मोपकरणो पर एवं अपने शरीर पर भी ममत्व भाव न रखना चाहिए ॥८॥

गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा, अभिवायण वदण पूयण वा ।
असकिलिट्ठेहिं सम वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी ।९।

अन्वयार्थ— (मुणी) साधु (गिहीणो) गृहस्थ की (वेयावडिय) वैयावृत्य (वा) अथवा (अभिवायण वदण

पूयण) अभिवादन-स्तुति, वन्दन-प्रणाम और पूजन-वस्त्रादि द्वारा सत्कार आदि कार्य न करे तथा (असकिलिट्ठेहिं) सक्लेश रहित उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने वाले साधुओं के (सम) साथ (वसिज्जा) रहे (जओ) जिनके साथ रहने से (चरित्तस्स) सयम की (न हाणी) विराधना न हो ॥९॥

न या लभेज्जा निउण सहाय,
गुणाहिय वा गुणओ सम वा ।
इक्को वि पावाइ विवज्जयतो,
विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥

अन्वयार्थ—(या) यदि कदाचित् कालदोष से (निउण) सयम पालन करने मे निपुण (गुणाहिय) अपने से अधिक गुणवान् (वा) अथवा (गुणओ सम वा) अपनें समान गुणो वाला (सहाय) कोई साथी साधु (न लभेज्जा) न मिले तो (पावाइ) पाप कर्मों को (विवज्जयतो) वर्जता हुआ (कामेसु) कामभोगो मे (असज्जमाणो) आसक्त न होता हुआ पूर्ण सावधानी के साथ (इक्को वि) अकेला विचरे किन्तु शिथिलाचारी एवं पासत्थो के साथ न विचरे ॥१०॥

सवच्छर वावि पर पमाण,
बीअ च वास न तहिं वसिज्जा ।
सुत्तस्स मग्गेण चरिज्ज भिक्खू
सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ ॥११॥

अन्वयार्थः— (सवच्छर) वर्षाकाल मे चार मास (च) और (वावि) बाकी समय मे एक मास रहने का (पर) उत्कृष्ट (पमाण) परिमाण है-इसलिए जहाँ पर चातुर्मास किया हो अथवा मासकल्प किया हो (तहिं) वहां

पर (बीय) दूसरा (वास) चातुर्मास अथवा मासकल्प (न वसिज्जा) न करना चाहिए क्योंकि (सुत्तस्स अत्थो) सूत्र एव उसका अर्थ (जह) जिस प्रकार (आणवेइ) आज्ञा दे उसी प्रकार (सुत्तस्स) सूत्रोक्त (मग्गेण) मार्ग से (भिक्खू) मुनि को (चरिज्ज) प्रवृत्ति करनी चाहिए ।।११।।

भावार्थ — वर्षा ऋतु मे जैन साधुओं को एक स्थान पर चार महीने और अन्य ऋतुओं मे अधिक से अधिक एक महीने तक ठहरने की शास्त्र की आज्ञा है। जिस स्थान पर एक बार चातुर्मास किया हो, दो चातुर्मास दूसरी जगह करने के बाद ही फिर उस स्थान पर चातुर्मास कर सकता है। इसी प्रकार जहाँ मासकल्प किया हो, उसी जगह फिर मासकल्प करना दो महीने के बाद ही कल्पता है।

जो पुव्वरत्तावरत्तकाले,
सपेहए अप्पगमप्पएण ।
किं मे कड किं च मे किच्चसेस,
किं सक्कणिज्ज न समायरामि । १२॥

अन्वयार्थ — (जो) साधु को (पुव्वरत्तावरत्तकाले) रात्रि के प्रथम पहर और पिछले पहर मे (अप्पग) अपनी आत्मा को (अप्पएण-अप्पगेण) अपनी आत्मा द्वारा (सपेहए-सपिक्खए) सम्यक् प्रकार से देखना चाहिए अर्थात् आत्म-चिन्तन करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) मैंने (किं) क्या-क्या (किच्च) करने योग्य कार्य (कड) किये हैं (च) और (किं) कौन कौन से तपश्चरणादि कार्य करना (मे) मेरे लिए (सेस) अभी बाकी है और (किं) वे कौन-कौन से कार्य हैं (सक्कणिज्ज) जिनको करने

की मेरे में शक्ति तो है किन्तु (न समायरामि) प्रमादादि के कारण मैं उनका आचरण नही कर रहा हूं ॥१२॥

किं मे परो पासइ किं च अप्पा,
किं वाऽहं खलिय न विवज्जयामि ।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो,
अणागयं नो पडिबंध कुज्जा ॥१३॥

अन्वयार्थः— साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) जब मैं सयम सम्बन्धी कोई भूल कर बैठता हूं तो (परो) दूसरे लोग-स्वपक्ष परपक्ष, वाले सभी लोग मुझे (किं) किस घृणा की दृष्टि से (पासइ) देखते हैं (च) और (अप्पा) मेरी खुद की आत्मा (किं) क्या कहती है (वा) और (अह) मैं (किं) अपनी किन-किन (खलिय) भूलों को (न विवज्जयामि) अभी तक नही छोड़ सका हू और क्यों नही छोड सका हूं ? अब मुझे इन सब भूलो को छोड़कर सयम में सावधान रहना चाहिए (इच्चेव) जो साधु इस प्रकार (सम्म) अच्छी तरह (अणुपासमाणो) विचार एव चिंतन करता है वह (अणागयं) भविष्य में (नो पडिबध कुज्जा) दोषो से छुटकारा पा जाता है अर्थात् फिर वह किसी प्रकार का दोष नही लगा सकता ॥१३॥

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,
काएण वाया अदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा,
आइन्नओ खिप्पमिव क्खलीणं ॥१४॥

अन्वयार्थः— (इव) जिस प्रकार (आइन्नओ) जाति-वान् घोड़ा (क्खलीणं) लगाम का सकेत पाते ही विपरीत

मार्ग को छोडकर सन्मार्ग पर चलने लग जाता है उसी प्रकार (धीरो) बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि (जत्थेव) जब कभी (कइ) किसी भी स्थान पर (माणसेण वाया अदु काएण) अपने मन, वचन और काया को (दुप्पउत्त) पाप कार्य की तरफ प्रवृत्त होते हुए (पासे) देखे तो (खिप्प) तत्काल (तत्थेव) उसी समय (पडिसाहरिज्जा) उनको उस पाप कार्य से खीच कर सन्मार्ग में लगा दे ॥१४॥

जस्सेरिसा जोग जिइदियस्स, धिईमओ सप्पुरिसस्स निच्च ।
तमाहु लोए पडिवुद्धजीवी, सो जायई सजमजीविएण ॥१५॥

अन्वयार्थः— (जिइदियस्स) जिसने चचल इन्द्रियो को जीत लिया है (धिईमओ) जिसके हृदय मे सयम के प्रति पूर्ण धैर्य है (जस्स) जिस (सप्पुरिसस्स) सत्पुरुप ने (जोग) मन, वचन, काया रूप तीनों योगो को (एरिसा) अच्छी तरह वश मे कर लिया है (त) ऐसे महापुरुष को (लोए) लोक मे (पडिवुद्ध जीवी) प्रतिवुद्धजीवी-सयम मे सदा जागृत रहने वाला (आहु) कहते है क्योकि (सो) वह (निच्च) सदा सजम जीविएण) सयम जीवन से ही (जीयई) जीता है ।१५॥

अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो,
सव्विदिएहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खियो जाइपह उवेइ,
सुरक्खियो सव्वदुहाण मुच्चइ ।१६। त्ति वेमि ॥

अन्वयार्थ.— (सव्विदिएहिं। सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाले (सुसमाहिएहिं) सुसमाधिवत मुनियो को (सयय) सदा (अप्पा) अपनी आत्मा की (खलु) सब प्रकार से

(रक्खियव्वो) रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उसे तप, संयम मे लगाकर पाप कार्यों से उसे बचाना चाहिए क्योकि (अरक्खियो) जो आत्मा सुरक्षित नही है वह (जाइपह) जाति पथ को (उवेइ) प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फसकर ससार मे परिभ्रमण करती रहती है और (सुरक्खियो) सुरक्षित अर्थात् पाप कार्यों से निवृत्त आत्मा (सव्वदुहाण) सब दुःखो का अन्त करके (मुच्चइ) मोक्ष को प्राप्त हो जाती है ॥१६॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ इति चूलिका सहित श्री दशवैकालिक सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ समाप्त ॥